शिक्षक-दिवस, १९७३

अस्तित्व की खोज

शिवरतन थानवी
पुरुषोत्तमलाल तिवारी



सूर्य प्रकाशन मन्दिर
बीकानेर

की [illegible]

सम्पादक
शिवरतन थानवी
पुरुषोत्तमलाल तिवारी

शिक्षा विभाग राजस्थान, बीकानेर
के लिए
सूर्य प्रकाशन मंदिर, बीकानेर-३३४००१
द्वारा प्रकाशित



मूल्य : पाँच रुपये पचहत्तर पैसे मात्र
संस्करण : १९७३



विकास आर्ट प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली-३२००१
द्वारा
सूर्य प्रकाशन मंदिर, बिस्सों का चौक, बीकानेर
के लिए मुद्रित

ASTITWA KEE KHOJ Edited By Shiv Ratan Thanvi, Purushotam Lal Tiwari (VIVIDH) Price Rs. 5 75

आमुख

राष्ट्र-निर्माण के कार्यों मे शिक्षक की भूमिका निर्विवाद है। समाज शिक्षक के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करने की दृष्टि से प्रतिवर्ष शिक्षक-दिवस का आयोजन करता है।

शिक्षा विभाग, राजस्थान इस अवसर पर शिक्षकों का सम्मान कर उन्हें राज्य स्तर पर पुरस्कृत करता है और उनके कार्यकारी जीवन के सृजनशील क्षणों को संकलनों के रूप में प्रकाशित करता है।

इन संकलनों मे शिक्षकों की क्रियाशील अनुभूतियाँ, साहित्य-सर्जना के अखिल भारतीय प्रवाह में उनकी संवेदनशीलता तथा उनकी सामाजिक-सांस्कृतिक समकालीनता के स्वर मुखरित होते हैं और उन्हें यहाँ एकस्थ रूप मे देखा और पढ़ा जा सकता है।

सन् १९६७ से विभागीय प्रवर्तन द्वारा सृजनशील शिक्षकों की रचनाओं के प्रकाशन का जो उपक्रम एक संग्रह के प्रकाशन से आरम्भ किया गया था, वह अब प्रतिवर्ष पाँच प्रकाशनो की सीमा तक पहुँचा है। प्रसन्नता की बात है कि भारत-भर में इस अनूठी प्रकाशन-योजना का स्वागत हुआ है और इससे सृजनशील शिक्षकों की अभिरुचियों को प्रखरतर होने की प्रेरणा मिली है।

सन् १९७२ तक इस प्रकाशन-क्रम मे बाईस पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है और इस माला में इस वर्ष ये पाँच प्रकाशन और सम्मिलित किए जा रहे है :

१. खिलखिलाता गुलमोहर (कहानी-संग्रह)
२. धूप के पखेरू (कविता-संग्रह)
३. रेजगारी का रोजगार (रगमंचीय एकांकी-संग्रह)
४. अस्तित्व की खोज (विविध रचना-संग्रह)
५. जूनां वेली : नुवां वेली (राजस्थानी रचना-संग्रह)

राजस्थान के उत्साही प्रकाशकों ने इस योजना में आरम्भ से

ही पूरा-पूरा सहयोग प्रदान किया है। इसी प्रकार शिक्षकों ने भी अपनी रचनाएँ भेजकर विभाग को सहयोग प्रदान किया है। इसके लिए लेखक तथा प्रकाशक दोनों ही धन्यवाद के पात्र हैं।

आशा है, पिछले प्रकाशनो की भाँति ये प्रकाशन भी लोकप्रिय होंगे और सृजनशील शिक्षक अधिकाधिक संख्या मे अगले प्रकाशनों के सहयोगी बनेंगे।

शिक्षक-दिवस, १९७३

र० सि० कूमट
निदेशक

प्राक्कथन

शिक्षक-दिवस प्रकाशन-योजना के इस सातवें वर्ष मे राजस्थान के सृजनशील शिक्षकों का विविध रचना-संकलन 'अस्तित्व की खोज' नाम से प्रस्तुत है।

जीवन के विचारात्मक क्षण, अनुभूति के क्षण, टीस और खीझ से बिम्बात्मक संबोध के क्षण अपने को किसी रीतिबद्ध ढांचे मे बांध-बूंधकर ही अभिव्यक्त करें, यह जरूरी नही। ढांचे और सांचे में बांधकर बात को बतियाना सायास ही संभव हो पाता है।

इस संकलन मे अनायास अभिव्यक्तियां भी है और सायास कृतियां भी। इसमें जहां मुक्त शैली के लेख हैं, वहां तडित भाव से फूट पड़ी विचार-कणिकाएँ भी है : द्रष्टा का अनुभव और प्रशस्य भाव से की गई टिप्पणियां भी है। वे सब रचनाएँ निबन्ध, हास्य और व्यंग्य, डायरी, यात्रा, संस्मरण-रेखाचित्र जैसे खण्डों मे सकलित करके रखी गई हैं, यद्यपि वैसा वर्गीकरण मात्र सुविधा की दृष्टि से किया गया है।

सम्पादकों को खेद है तो इतना-सा कि निबन्धों मे गतिशील समसामयिक जीवन की ज्वलन्त समस्याएँ अधिक नही समेटी जा सकी है. डायरी, रेखाचित्र, रिपोर्ताज, फीचर जैसी विधाओं या शैलियों मे सामग्री कही अत्यातिअल्प और कही अनुपलब्ध रही है। अगले प्रकाशन मे इन पक्षों पर हमारे लेखक यत्नशील होगे ही।

बाकी, यह जो न्यास बन पाया है उसमे परिप्रेक्ष्य की व्यापकता तो है ही। हम तो लेखक की बात के आस्वादक ही होंगे, अधिक-से-अधिक उसके सवीक्षक या समीक्षक भी।

जिनके सहभागित्व से यह संकलन रूपायित हो पाया है, उन सबकी प्रतिमा मे विश्वास के साथ, पाठकों की सेवा में यह प्रकाशन सादर प्रस्तुत है।

बीकानेर :
शिक्षक-दिवस, १९७३

—सम्पादक

अनुक्रम

निबन्ध

डायरी

यात्रा

संस्मरण तथा रेखाचित्र

हास्य तथा व्यंग

निबन्ध

अस्तित्व की खोज

□

श्यामसुन्दर व्यास

सागर और बूंद का सहवास आनंद की चरम परिणति पर था। बूंद स्वयं सागर होने जा रही थी। किन्तु सहसा बूंद ने अपने अस्तित्व की कल्पना की। विचार-कल्पना के साथ-ही-साथ बूंद अपने महान्-चिरंतन आश्रय-स्थल से विलग हो गयी और अस्तित्व की खोज में चल पड़ी।

सरिता, गिरि की गहन घाटियों को पार कर वह आगे बढ़ती रही और अस्तित्व का सम्मोह पोषित होता रहा। कालक्रमेण जीवन-प्रतिष्ठा एवं अमरता की भूख बढ़ी। अपनी सृष्टि-संरचना की कल्पना साकार हो उठी। चारों ओर वैभव, भौतिक सुखों के ढेर के ढेर दृष्टि में आने लगे। पार्थिव मन भौतिक रसास्वादन के आनंद में डूब गया। सुख-उपभोग बढ़े। ये बड़े आनंददायी थे, पर स्थिर न थे। इन्हें स्थिर करने का बोध हुआ, पर मन पंगु था, असमर्थ था अतः ऐसा हो न सका। फलतः दुःख-दैन्य बढ़ा। शनैः शनैः सजीव आनंद तिरोहित हो चला, जीवन में और निराशा का संचरण हुआ। अस्तित्व के प्रति उपेक्षा भाव जगे। बूंद ने अपने-आपको कोसना शुरू किया। सम्पूर्ण जीवन संघर्ष का घर बन गया और बूंद छटपटाने लगी।

दूर-दूर तक देखा। एक सरिता अपनी अगणित जलधाराओं में लिपटी प्रफुल्लता से बह रही है। उसके जीवन में उल्लास है, अमृत्व है, आशा की अमर भावना है।

बूंद दौड़कर निकट आयी और बोली—बहन! तुम्हारे असीम आनंद का क्या रहस्य है?

उत्तर मिला—समर्पण मेरा जीवन है।

बूंद ने विनम्र अभ्यर्थना की—बहन! क्या मुझे भी यह गहन ज्ञान दोगी?

सरिता ने हँसकर उत्तर दिया—तुम्हारी अस्तित्व-भावना ने तुम्हें एकाकी बनाया है।

बूंद ने उद्वेलित होकर कहा—बहन ! मैं इसकी मिथ्या छवि देख चुकी हूँ। यह घृणित और घिनौनी भावना है।

सरिता बोली—हाँ, बहन ! तुम शाश्वत जलधारा से बहुत दूर आ गिरी हो। युग एवं काल की अमर शृंखला से पोषित अहं को अब भूलना सहज एवं सरल नहीं।

बूंद पराजित थी, दिग्भ्रांत थी। उसका मन श्रांत, क्लान्त था। वह पगली की भांति दूर तक चली आयी और देखा कि उन्मत्त निर्झर जीवन की असीम मादकता बिखेरकर बह रहा है। गति में स्थिरता, दृढ़ता, पथ में निश्चलता, निश्छलता उसका पग-पग पर स्वागत कर रही है। आनन्द की अनुपम छवि देख बूंद ने कुण्ठित स्वर में कहा—भ्राता ! क्या तुम अपना रहस्य बांट सकोगे ?

निर्झर बोला—बहन ! जीवन का अस्तित्व भूल चुका हूँ। तुम चाहो तो इसे रहस्य मान सकती हो।

बूंद निराश थी। वह अपने अस्तित्व का पुनः-पुनः बलिदान करना चाह रही थी। पर हत्या होती कैसे ! उसका अहं परमाणु-सा सूक्ष्म एवं शक्तिशाली था। इसे अस्तित्वहीन करना कठोर साधना थी। मन रो उठा, नेत्र छलछला आये। अधर आँसुओं से भीग गये, प्राण द्रवित हो गया। अन्तर-कोलाहल उसे सागर की ओर लौट जाने को बार-बार कह रहा था। वह दौड़ी सागर के तट पर आयी। सागर के महान् अस्तित्व को देख वह भूल गयी उसे क्या विनम्र निवेदन करना था। थोड़े क्षण ठहरी। मन शान्त हुआ। करबद्ध हो बोली—हे परम देवता ! मैं चिरपोषिता बूंद हूँ। मैंने पूर्व में सहवास के सुन्दर सपने देखे हैं। किन्तु आज दुःख में डूब रही हूँ, संघर्ष मुझे घेरे है। मुझे शरण दो, आश्रय दो।

तत्काल कठोर उत्तर मिला—तुम्हारे दुःख संस्कारजन्य है, इन्हें अशेष होने दो। जाओ, समष्टि में व्यष्टि लीन हो जाय, तब आना।

बूंद की आँखें खुली। वह लौट गयी और अपने अस्तित्व को कण-कण मे नेरखेबिलगी।

संवाद की तलाश

□

क्षमा चतुर्वेदी

शिक्षण जगत् में बढ़ रही अनेक समस्याओं पर अगर गंभीरता से विचार किया जाय तो प्रमुख कारण यही दृष्टिगोचर होता है कि कहीं कुछ टूट गया है। शिक्षक जो आज वेतनभोगी द्रोणाचार्य के रूप में उभरता हुआ वर्ग है, वह मात्र आकर छात्रों को रटंतू शब्दावली में किताबों को उल्टा उगल देने में ही और छात्रों को बिना किसी तर्क के उसे स्वीकार करने को ही अनुशासन और ज्ञान-प्राप्ति की एकमात्र मुद्रा समझता है। उसके सामने प्रश्न पूछ लेना या किसी तर्क पर भी उतर आना वह अपनी तौहीन समझता है। एक बात और जो नव-बौद्धिक वर्ग में उभर रही है, वह यह है कि वह अन्य किसी प्रकार के नैतिक मूल्य को उपयोगी भी नहीं समझता है। शिक्षा का उद्देश्य छात्र का सर्वाङ्गीण विकास है या उसकी नैसर्गिक वृत्तियों का उद्घाटन होना है; या लोकतांत्रिक जीवन-पद्धति के अनुरूप नागरिक तैयार करना है; यह सब कुछ किताबी बात रह गई है। शिक्षक मात्र सरकारी कर्मचारी रह गया है—जोकि शिक्षण संस्थाओं को उसी तरह चलाता जा रहा है जैसे नगरपालिका या पुलिस थाना या अन्य कोई सरकारी दफ्तर चलता है।

और छात्र समुदाय! वह मात्र यह मानकर चलता है कि उसका जीवन के महत् लक्ष्य से कोई सम्बन्ध नहीं है। जब सारा समाज ही पतनोन्मुख है तब मुझे ही प्रगति से क्या लेना है। वह शिक्षण संस्थानों को मात्र मनोरंजन का केन्द्र मान बैठा है। शिक्षक का उसकी निगाहों में कहीं कोई सम्मान नहीं रह गया है। वह एक अलार्म घड़ी है जिसका काम कहीं न कहीं बजना ही है।

आज अगर कहीं पर भी वहम होती है तो छात्र समुदाय सारा दोष अपने शिक्षक के ऊपर रखकर बरी हो जाते हैं तो दूसरी ओर शिक्षक छात्र समुदाय को ही अनुशासनहीन तथा अराजक की संज्ञा देकर अपने-आपको मुक्त समझते हैं।

प्रश्न यहीं समाप्त नहीं हो जाता है। इस समस्या का मूल कारण यही है कि आज शिक्षण संस्थाएँ भी सरकारी कार्यालय या कारखाने की शक्ल में

बदलती चली जा रही हैं। छात्र यूनियन अपने-आपको शिक्षण संस्था से खींचकर किसी कारखाने में ले जाने की कोशिश करती है। छात्र अपने-आपको मजदूर समझकर, मिल-मालिक के रूप में शिक्षक या अन्य शिक्षण अधिकारियों से संघर्ष को उतारू हो जाते हैं। कहीं किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध नहीं रह पाता है। मजदूर-मालिक संघर्ष छात्र-शिक्षक संघर्ष के रूप में उभरता है तो दूसरी ओर शिक्षक अपने-आपको सरकारी अफसर समझता है; वह उसकी उन सभी त्रुटियों को आत्मसात कर शिक्षण संस्थाओं को चलाना चाहता है, जिनसे कि आज प्रशासन बदनाम है। फिर वही हो जाता है, जोकि नहीं होना है। शिक्षण संस्थाओं का ढाँचा ही बदल जाता है। शिक्षक जहाँ अपने-आपको असुरक्षित महसूस करता है, वहीं छात्र समुदाय अपंग तथा अकेला।

समस्या अभी गंभीर नहीं हुई है। परन्तु अगर उचित समय पर ध्यान नहीं दिया गया तो समस्या के गंभीर होने का खतरा है। उचित यही है कि दोनों वर्ग अपने-आपको एक-दूसरे का पूरक समझें। ज्ञान का पथ बहुत विस्तृत एवं बीहड़ है। छात्र एवं शिक्षक दोनों ही साधक है, दोनों ही जिज्ञासु हैं जो लक्ष्य के प्रति सजग एवं कर्मशील हैं। एक कुछ कदम आगे बढ गया है, दूसरा उधर बढ़ रहा है। पहले के पास अपने कुछ अनुभव हैं, कुछ सफलताएँ हैं; और दूसरा उसके निर्देशन में उसके अनुभवों से लाभ लेकर लक्ष्य की ओर बढ रहा है। यही शिक्षक और छात्र समुदाय का उचित सम्बन्ध है। इसके बीच में तनातनी और अलगाव का आना उचित नहीं है। इस शिक्षण-समस्या का मूल कारण संवाद की समाप्ति है। दोनों के बीच में कहीं कोई सेतु नहीं रह गया है, जहाँ पर कि छात्रमन और शिक्षकमन आकर मिल सकें। आवश्यकता है इस संदर्भ में शिक्षण संस्थाओं में संवाद की खोज और सेतु का निर्माण सुचारु रूप से किया जाय।

ये दोनों ही वर्ग एक-दूसरे के पूरक है। इस संदर्भ में शिक्षक वर्ग को भी अपने आप में परिवर्तन करना होगा। वर्तमान शिक्षा-पद्धति में शिक्षक एक पदाधिकारी बनकर रह गया है। महाविद्यालयों में उसे राजपत्रित अधिकारी के सारे अधिकार मिल गये है। परन्तु उसका अधिकार-क्षेत्र अन्य कर्तव्यों से जुड़ा हुआ है। उसे वह यहीं पर भूल जाता है। शिक्षक को अफसर बनाने से शिक्षा-पद्धति का हित हुआ है या अहित यह एक अलग प्रसंग है। पर इतना जरूर है, अफसर बनने के बाद शिक्षक अपने ही छात्र समुदाय से कटकर रह जाता है। वह छात्र को सही नेतृत्व नहीं दे पाता; न ही छात्रों की दृष्टि में अपने शिक्षक का कोई सम्मान रह पाता है। वे उसे मात्र दब्बू, प्रशासन से भयभीत सरकारी कर्मचारी के रूप में स्वीकार करते हैं, जिसका कार्य पग-पग पर स्थानीय प्रशासनिक अधिकारियों की खुशामद करना एवं अपने स्थानांतर से भयभीत होकर स्थानीय टटपूँजिए नेताओं की खुशामद में ही संलग्न रहना होता है।

छात्र जो अनुकरण से ही पथ पर अग्रसित होता है, जब वह अपनी ही शिक्षण संस्था में यह कायरता पाता है, तब वह उन्हीं स्थानीय टटपूंजिये नेताओं की गोदी में चला जाता है, जिनकी कि जेब में उसके शिक्षक रहते हैं। और प्रतिभा इस तरह फिर तृणात्मक होकर विघटन की ओर मुड़ जाती है। यही कारण है कि शिक्षण संस्थाएँ हड़ताल, घेराव, आगजनी का केन्द्र बनती चली जा रही है। मामूली-से-मामूली बातें जिनका समाधान बातचीत से हो सकता है, उनके समाधान भी संघर्षों में होने लग गए है और शिक्षक वर्ग उदासीनता से यह सब देख रहा है। वह कहीं पर इन छात्रों की किसी भी समस्या मे शरीक नहीं हो पाता है। और तब छात्र अपने ही शिक्षक को वह सम्मान नहीं देता है जिसका कि वह हकदार है।

इसलिए आवश्यक है कि आज इन सम्बन्धों पर गंभीरता से विचार किया जाए। क्या कारण है कि आज छात्र समुदाय शिक्षकों के प्रभाव से मुक्त होकर प्रभावहीन, निष्क्रिय, अराजक वातावरण में संलग्न हो गया है। संवाद की तलाश इसलिए आज जरूरी है। छात्र समुदाय और उसके शिक्षक के बीच में संवाद को पुनः गति देनी होगी तभी शिक्षण संस्थाओं के स्वरूप मे परिवर्तन आ सकता है और वे आशाओं के अनुरूप गतिशील हो सकती है।

ओफ़, कितना शोर है !

सिराजुद्दीन 'सिराज'

आधुनिक युग को कई संज्ञाएँ दी गई जैसे—विज्ञान का युग, मशीन का युग, आदि। किन्तु मेरे विचार मे तो आधुनिक युग को 'शोर का युग' कहा जाना चाहिए। आज आप कही भी चले जाइये, शोर पायेगे। रेलवे स्टेशन, बस स्टैंड, पार्क, यहाँ तक कि विद्यालय भी शोर से मुक्त नही। पाश्चात्य देश तो शोर से अत्यधिक पीड़ित है। वहाँ थोडी भी शांति के लिए लोग बडी-से-बडी कीमत देने को तैयार है। मेरे एक अंग्रेज मित्र ने मुझे बताया कि इंग्लैंड मे छोटे-से-छोटे गाँव में भी वायुयान का शोर सुनाई देता है।

पूर्व को शांति का केन्द्र माना गया है और इसी कारण पाश्चात्य पूर्व की ओर झुक भी रहा है। पाश्चात्य देशो से शांति के भूखे लोगों का भारत आने का ताता ही लग गया है। किसी भी विदेशी की यह धारणा कि भारतवर्ष शांति का केन्द्र है, पालम से ही दूर होना शुरू हो जाती है। मैं जब अपने एक जर्मन मित्र को लेने पालम पहुँचा तो मुझे भी यह अनुभव हुआ कि शोर की दृष्टि से रेलवे स्टेशन और हवाई-अड्डे मे कोई भी अन्तर नही है। मेरे मित्र को वहाँ के कस्टम का उन्ही के शब्दो मे 'नॉयजी केऑस' (Noisy Chaos) बड़ा अजब लगा। खैर, जैसे-तैसे कस्टम से क्लीयर होकर बाहर आये तो टैक्सी वालो ने उनका घिराव किया। उन बेचारो पर टैक्सी ड्राइवर ऐसे टूटे जैसे मरे हुए जानवर पर गिद्ध टूटते है। यदि मैं उनके साथ न होता तो पता नही उनका क्या होता। शायद वह जर्मनी वापस ही चले जाते। जर्मनी भारत से कही अधिक औद्योगिक देश है पर उन्होंने ऐसा शोर वहाँ नही पाया। मुझे बड़ी शर्म आ रही थी कि भारत के बारे मे वे जाने क्या-क्या सोचेंगे क्योंकि अभी तो 'इब्तदाये इश्क' ही हुआ था। खैर, मैं बहुत सारे चक्रव्यूहो को तोडकर उन्हे घर लाने में सफल हुआ हालांकि मेरे घर तक पहुँचते-पहुँचते उनकी भारत-दर्शन की इच्छा आधी रह गई थी। जैसे ही घर पहुँचा मुहल्ले के सारे बच्चे उनके पीछे लग लिये और लगे 'अंग्रेज-अंग्रेज' चिल्लाने क्योंकि वे तो

प्रत्येक गौरवर्ण वाले को अंग्रेज ही समझते हैं । जो उनके साथ हुआ जाने दीजिये, बस इतना समझ लीजिये कि बड़ी मुश्कल से तीन मास ही भारत रह सके जबकि उन्हें एक वर्ष रहना था ।

आप चाहे जो भी हो, यदि आप भारत में रहते है तो शोर से भली-भाँति परिचित होंगे । यदि डॉक्टर हैं तो मरीजों के शोर से आप यदि खुद मरीज हो जायें तो आश्चर्य चकित होने की आवश्यकता नही । यदि इंजीनियर है तो आपको मशीनों और आदमी के शोर के मुकाबले का अनुभव होगा ही । यदि आप अध्यापक है तो ऐस्प्रो और एनासिन आप वैसे ही अपने-आप रखते होंगे जैसे हिप्पी अपने पास 'हशिश' रखते है । अध्यापक के लिए तो शोर विद्यालय मे पहुँचने के साथ ही शुरू हो जाता है । उपस्थिति-अंकन के समय ऐसा लगता है जैसे आप कक्षा में न होकर सब्जीमण्डी में हैं ।

लोग शांति के लिए मंदिर जाते हैं । दुर्भाग्य से मेरे मकान के पास ही एक चर्च, एक मस्जिद व एक मन्दिर है । आप सोचते होंगे कि मैं बडा नास्तिक हूँ कि भगवान के तीन-तीन घर मेरे घर के पास है और इसे मैं दुर्भाग्य कहता हूँ । किन्तु यदि आप मेरे घर कभी भी तशरीफ लाये तो आप भी मेरे से सहानुभूति करेंगे । सवेरे चार बजे ही मुल्ला की अजान से नींद मे जो शॉक लगता है उसे बस कुछ मत पूछिये—ऐसा लगता है किसी ने मुझे आसमान से नीचे पटक दिया हो । फिर शीघ्र ही मन्दिर मे घंटे बजने शुरू हो जाते है । घंटे इतने जोर से व इतनी देर तक बजते है कि ऐसा लगता है या तो ईश्वर बहरा है या फिर घंटे सुनकर बहरा अवश्य हो गया है । और जब कही अखण्ड कीर्तन होता है तो—खुदा खैर करे—मुझे घर छोड़कर वन-भ्रमण करना पड़ता है । वैसे मैं मन्दिर नही जाता पर कभी-कभी जाता हूँ और प्रार्थना करता हूँ—भगवान् अखण्ड कीर्तन के प्रोग्राम को केन्सिल कर दो या फिर कम-से-कम पोस्टपोन तो कर ही दो । चर्च की घंटियां भी सवेरे आठ बजे बजने लगती हैं ।

मेरे एक मित्र है । मैं उन्हें बहुत भाग्यशाली मानता हूँ क्योंकि वे कुछ बहरे है । वे अपने-आपको तब तक दुखी मानते थे जब तक उन्होंने 'हियरिंग एड' नही खरीदी थी । एक दिन 'हियरिंग एड' लगाकर वह मेरे घर आये तो मंदिर के घंटों की आवाज सुनकर उन्होंने तुरन्त 'हियरिंग एड' हटा ली और चैन से बैठ गये । अब वह 'हियरिंग एड' का कम ही प्रयोग करते है । परिवार नियोजन के शब्दों मे उनके परिवार में 'घणो टाबर घणो दु:ख है' क्योंकि उनके पाँच लड़कियाँ तथा तीन लडके हैं । किन्तु उनके इस बहरेपन ने उन्हें सुखी बना दिया । जब बच्चे लड़ते-झगड़ते हैं तो वे तुरंत अपनी 'हियरिंग एड' हटा लेते है । इस प्रकार जब उनकी पत्नी उनके रात को देर से लौटने के कारण उन पर बरसती हैं तो भी उनका 'हियरिंग एड' उनकी जेब मे होता है ।

नसीहत :
किसी को मर्ज़, किसी को सहारा

□

आनन्दकौशल सक्सेना

सभ्यता के विकास के साथ-साथ ही लेन-देन दुनिया के हर कारोबार का एक अनिवार्य दस्तूर बना रहा है, लेकिन जहां लेना हर युग में प्राय. सर्वप्रिय बना रहा है, देने के विचार मात्र से सभी का *माथा ठनकता है*। देने के सवाल मे अपवाद मात्र इतना है कि संसार में एक वस्तु ऐसी भी है जिसे देने में किसी भी व्यक्ति को तनिक हिचक नही होती, अपितु इसके विपरीत देनेवाले को एक प्रकार की खुशी की अनुभूति ही होती है। और वह उदार हृदय से अनवरत नि शुल्क दी जानेवाली वस्तु है—नसीहत ! कहावत भी है—'हर्र लगे न फिटकरी रग चोखा आय'—तदनुसार नसीहत देनेवाले का सिवाय ज़ुबान हिलाने के कुछ खर्च तो होता नही वरन् उसे किसी को नसीहत देकर बदले मे एक प्रकार का आत्मसुख ही अनुभव होता है। यहाँ भी उसे देने मे लेने का सुख मिल जाता है।

आप चाहे सफर मे हों, किसी प्रतिष्ठान या कार्यालय में कार्य करते हों, किसी भी धर्म से सम्बन्धित पूजागृह या इबादतगाह मे हो, या भले अपने घर में ही क्यों न बैठे हों, किन्तु नसीहत की पहुँच सर्वत्र समान रूप से है। कोई व्यक्ति इसके प्रभाव से वंचित नही और कोई स्थान निरापद नही। इसके लिए काल, धर्म, वर्ण अथवा लिंग-भेद आदि का भी कोई बन्धन नही। आप चाहे जब और चाहे जहां लोगों को बड़ी कुशलतापूर्वक पूर्ण निष्ठा के साथ इस कर्तव्य का तन-मन से निर्वाह करते हुए देख सकते हैं। वैसे तो इसकी ठेकेदारी बड़े-बूढ़ों के पल्ले पड़ी है—कहना चाहिए, पल्ले नही पड़ी वरन् उन्होंने नसीहत देने का सर्वाधिकार सुरक्षित करवा रखा है। क्योंकि उम्र से छोटा व्यक्ति यदि अपने से बड़े के मुकाबले कोई अधिक ज्ञान की बात कह दे और वह तर्क की कसौटी पर काटी भी नही जा सकती हो, तो बड़ी उम्रवाला तुरन्त अपना अमोघ अस्त्र काम में लाते हुए कहता है—'छोटे मुंह बड़ी बात शोभा नही देती'। बस यहीं तेवर ठंडे



देगा। झूठ नहीं बोलने की नसीहत देनेवाला व्यक्ति स्वयं झूठ से परहेज नहीं करेगा। क्रोध और लालच को इंसानी लानत बतानेवाला स्वयं इसका शिकार बना रहता है। नसीहत करनेवाले निन्यानवे प्रतिशत व्यक्ति अपने स्वयं के आचरण को उसी प्रकार नजरन्दाज करते हैं जैसे दीपक अपने नीचे अँधेरा ही रखता है। इसीलिए तो इसकी विशेषता का बखान गोस्वामी तुलसीदास ने भी तो यह कहकर किया है—'पर उपदेश कुशल बहुतेरे'। नसीहत करने के इस संक्रमण से संसार का छोटा-बड़ा, स्त्री-पुरुष, योगी-भोगी कोई अछूता नहीं बचा है। विद्वानों का तो यह खास मर्ज है; फिर प्रचारक, लेखक, कवि, कहानीकार, अध्यापक, भाषणकर्ताओं का तो सहारा ही नसीहत है। नसीहत का सहारा लिये बिना इनकी रोजी-रोटी की कल्पना ही नहीं की जा सकती।

नसीहत का एक विशेष मनोवैज्ञानिक पहलू और भी दिलचस्प है। वह है नसीहत करने के लिए अपनायी गई विभिन्न मुद्राएँ व भाव। शान्त सौम्यभाव, क्रोध, खीझ, अनुनय-विनय व मासूमियत सभी रूप अपनाकर नसीहत अपना एक निश्चित एवं अमिट प्रभाव श्रोता पर छोड़ती है। नसीहत करनेवाला व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को सुननेवाले की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण मानता है। उसके चेहरे पर बड़प्पन की गरिमा एवं योग्यतासूचक भाव स्पष्टतः परिलक्षित होता है। यदि कोई धार्मिक उद्बोधन किया जा रहा हो तो वक्ता के मुखमण्डल पर सौम्यभाव दिखाई पड़ेगा। नेताओं के भाषण में आरोह-अवरोह के साथ-साथ आपको अनेक भाव उनके चेहरे पर देखने को मिल सकते हैं। अपने राजनैतिक विरोधियों की खबर लेते समय उनकी क्रोधपूर्ण भंगिमा, श्रोताओं की नासमझी पर तरस खाते हुए विरोधियों के व्यर्थ के झाँसे में आने के लिए दी गई खीझभरी मीठी फटकार, राजनैतिक घटनाओं को तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत करते समय विश्वस्ततजनक साधिकार विद्वत्ता की झलक निस्सन्देह एक ही रूप में बहुरूप होता है। अपनी बात को सत्य एवं विश्वसनीय बनाने के लिए सत्यवादी हरिश्चन्द्र का अभिनय तथा अपनी बात मनवाने के लिए का गई अनुनय चिरौरी के अवसर की कुटिलता के आवरण में छिपी मासूमियत की मुद्रा भी देखते ही बनती है।

बड़ी उम्र के लोगों के द्वारा अपने से छोटों को दी गई सीख में उनका सौहार्द व स्नेह का भाव छिपा होता है। उनके हृदय में एक आशंका बनी रहती है कि यदि वे अपने से छोटों को सावधान न करें तो सम्भवतः उन्हें सही दिशा मिल ही नहीं सकेगी। प्रायः बड़ी आयु के वयस्क लड़के-लड़कियों को उनके माता-पिता व अन्य बड़े-बूढ़ों के द्वारा दी गई नसीहत हास्यास्पद व अटपटी-सी भी प्रतीत होती है। अकेले यात्रा पर जाते समय बड़ी उम्र के लड़के-लड़कियों को सर्दी-गर्मी के मौसम का ध्यान रखने को कहना, उनकी लापरवाही का वर्णन करते

अलौकिक सामर्थ्य का मूल : परमार्थ

□

विश्वेश्वर शर्मा

प्रेम और वासना, धर्म और आडम्बर, राजनीति और भ्रष्टाचार ही की तरह स्वार्थ और परमार्थ भी एक-दूसरे से इतने घुले-मिले रहते हैं कि नीर-क्षीर विवेक राजहंस को भी कठिन लगे। यह कह पाना अत्यन्त कठिन है कि किसी स्वार्थ में परमार्थ का अंश कितना है, अथवा किसी परमार्थ में स्वार्थ का अंश कितना है।

सामान्य अर्थ मे व्यक्तिगत हित में की जाने वाली चेष्टाओं को स्वार्थ कहते हैं और किसी अन्य के हित मे की जाने वाली चेष्टा परमार्थ के नाम से पुकारी जाती है। किन्तु विशिष्ट अर्थों में मनुष्य की आसुरी वृत्ति स्वार्थ नाम से और दैवी वृत्ति परमार्थ नाम से जानी जाती है। स्वार्थ, अर्थात् मनुष्य की पाशविक चेष्टा। परमार्थ, अर्थात् मनुष्य की देव भूमिका। अपने लिए तथा अपने मनचाहे व्यक्तियों के लिए हम सब कुछ करने को तत्पर रहते हैं। अधिक से अधिक सुख-सुविधाएँ हम अपने लिए सुरक्षित कर लेना चाहते हैं। हमें सम्मान चाहिए, प्रतिष्ठा चाहिए, नानाविध भोग-साधन चाहिए। हर स्थान, हर स्थिति, हर चेष्टा व्यक्तिगत सुरक्षा ही के लिए तो की जा रही है। झूठ, चोरी, भ्रष्टाचार, बेईमानी—क्या नही करते हम स्वार्थ के वशीभूत ?

स्वार्थ दुर्व्यसनों का जनक है, कुविचारों की उत्पत्ति करता है, विवेक कुंठित करके क्रोध और मोह के नागपाश में हमें बांध देता है। फिर हमारी हर चेष्टा मतलब देखने की हो जाती है—अर्थात् अमुक काम में हमें क्या लाभ होने वाला है। जिस काम में हमें कोई लाभ होने वाला नही, उससे चाहे अन्य अनेक को लाभ पहुंचता हो—करना हम उचित नही समझते।

दान-पुण्य होते हैं। तीर्थ-यात्राएँ की जाती हैं। बड़ी-बड़ी धर्मशालाएं, अस्पताल और स्कूल खोले जाते हैं। अखंड अन्न-क्षेत्र स्थापित होते हैं। बारह-मासी प्याऊएँ बैठाई जाती है। नानाविध मन्त्रोपासनाएं की जाती हैं और सुपात्रों

का सत्कार किया जाता है, लेकिन क्या इन सबके पीछे परमार्थ ही एकमात्र भावना है ?

व्यक्ति अपने अन्तर्जगत में कई कृत्याकृत्यों से नैतिक शून्यता का अनुभव करने लगता है। और अपने दुष्कर्मों का परिहार करने की इच्छा से, भविष्य सुखमय बनाने की इच्छा से किंवा निर्विघ्न जीवन-यापन की इच्छा से अथवा अन्य किसी भौतिक फलेच्छा से प्रभावित होकर सत्कृत्य की ओर अग्रसर होता हूँ। कोई लोभ अथवा कोई-न-कोई भय आपको बड़े-से-बड़े सत्कृत्य के आधाररूप में बैठा मिलेगा।

फिर बड़े-बड़े परोपकारी भी जब कर्त्ता की हैसियत के अनुपात से आँके जाएँ तो वे किसी सामान्य छोटे परोपकार से भी बहुत छोटे प्रमाणित होते हैं।

स्वार्थसिद्धि के हेतु किया गया परमार्थ भी स्वार्थ ही की संज्ञा में आता है।

जितने क्रियाकलापों को हमने मोटे अर्थ मे कर्तव्य नाम की संज्ञा दी है, वे सभी मूलरूप मे प्रतिष्ठित स्वार्थ ही हैं। सरकारें बड़े-बड़े उद्योग-धंधे, मन्दिर, मस्जिद, गिरजाघर या यों कह दें यह पूरा का पूरा संसार-चक्र स्वार्थ की कीली पर घूम रहा है। हमारे सम्बन्ध, अलगाव, शत्रुता और मैत्री—सब स्वार्थ पर केन्द्रित है। स्वार्थों की गुलाम मनोवृत्ति होती है। स्वार्थी का कपट-व्यवहार होता है। स्वार्थी जीवन के हर क्षेत्र में व्यभिचार को बढावा देता है। शनैः-शनैः मनुष्य इतना स्वाभिमानहीन हो जाता है कि उसमें और दुतकारे जानेवाले कुत्ते में कोई अन्तर नही रहता। स्वार्थी कभी-कभी अन्य स्वार्थी का भी सहयोग नही कर पाता, जब तक सहयोग के अन्तर्गत अपना स्वार्थ निहित न हो। पिता-पुत्र मे मुकदमे होते है। भाई-भाई लड़ मरते है। पति-पत्नी पृथक् हो जाते हैं। मनुष्य स्वार्थ ही के वशीभूत अपने स्नेह-पात्र की हत्या करने तक पर उतर आता है। सच ही, ऐसा लगता है जैसे स्वार्थरूपी भयानक दैत्य से बचने का कोई उपाय नही। हम स्वार्थ में सोते है, स्वार्थ मे जागते है, स्वार्थ मे सोचते है, स्वार्थ ही में क्रियाएँ करते हैं। हमारा तथाकथित परमार्थ भी किसी न किसी स्वार्थ ही से सम्बद्ध है।

है भी ऐसा ही। हम कही भी कभी भी स्वार्थ से अछूते नही रहते। रह भी नहीं सकते। क्योंकि स्वार्थ से अछूते रहकर परमार्थ के निकट आने के लिए पहली शर्त स्वयं को कष्ट देने की है, जो हमसे पूरी नही होती। हम स्वयं को कष्ट देकर किसी का भला करने को कभी तैयार नही होंगे। दूसरों की भलाई के लिए अपना सर्वस्व निछावर कर देने की पवित्र भावना बड़े-बड़े संत पुरुषों मे भी नही पायी जाती। लेकिन देवी-देवताओं को दुर्लभ यह महत् परमार्थ तत्त्व एक निश्छल गरीब गृहस्थ के निकट देखने को मिल सकेगा, एक परिश्रमी किसान

की साफ़-सुथरी झोंपड़ी में देखने को मिल सकेगा। एक उच्चस्तरीय कलाकार में देखा जा सकेगा। प्राणीमात्र का उपकार कर पाने की सहज वृत्ति ही परमार्थ की श्रेणी मे आती है। परमार्थ क्रिया न होकर स्वभाव है। प्रेम और करुणा इसके जनक है। उदारता इसकी सहायक है। अनासक्ति इसकी शक्ति है। धैर्य, राह और साधना गति है। निरन्तर सद्गुणो की वृद्धि इसका क्रमिक प्रतिफल और जीवन की पूर्णता तथा स्वरूपदर्शन का अखंड आनन्द इसका अनाकांक्षित महत् फल है। जिसका स्वभाव पारमार्थिक हो जाय, वह यदि ईश्वर नही तो ईश्वर से कुछ कम भी नही। इतिहास साक्षी है, जिन्होने औरों के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया वे कोटि-कोटि जनता के भगवान हो गए। आज हम संसार के भिन्न क्षेत्रो मे जिन विभिन्न व्यक्तियों की भगवान की तरह पूजा करते है वे महापुरुष क्या थे ? एक ही उत्तर है—परमार्थी ईसा, बुद्ध, मोहम्मद, गाधी, महावीर अथवा गुरुनानक, भगवान राम अथवा श्रीकृष्ण—सभी की महत्ता, सभी की शक्ति, सभी का बड़प्पन इस सहज पारमार्थिक स्वभाव के अन्तर्गत छिपा है।

परमार्थ ईर्ष्या-द्वेष नष्ट करके दृष्टिकोण को पवित्र करने में सर्वाधिक सहायक होता है। दूसरो को सुखी देखकर स्वयं सुख अनुभव करने की अलौकिक सामर्थ्य जागती है। यह सुख शब्द परिधि में नही बांधा जा सकता। इसका मिठास चुपके-चुपके सहजता से कोई परोपकार करने पर ही मिल सकता है। अहिंसा, सहिष्णुता, सत्यता, सभ्यता, विवेक और सच्चा जीवन-सुख परमार्थतत्त्व में इसी तरह समाया रहता है जैसे दूध मे दही, मक्खन, मावा, मिसरी और अमृत का अंश। यदि जीवन की नाव को सफलता की ओर मोड़ना है तो उसे स्वार्थ की दिशा से परमार्थ की दिशा मे घुमाना होगा। बस, यह घुमाव ही कठिन है। फिर तो स्वभाव की वायु नाव को सहारा देती है और साधना की पतवार इसे खेती जाती है।

यह घुमाव है भी बहुत आसान। सदा अपने भाग मे से किसी जरूरत-मंद को देने की वृत्ति। अपनी इच्छा मारकर किसी ठिठुरते गरीब को एक प्याली पिला दी।

मन मे इस इच्छा का वेग कि मेरे द्वारा किसी का बुरा न हो। एक ललक—क्या मैं आपके कुछ काम आ सकता हूं ?

जीवन-सौन्दर्य

□

काशीलाल शर्मा

सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्—इन तीनों तथ्यों का पारस्परिक संयोग ही जीवन की वास्तविक परिभाषा है। कुछ लोग जीवन की पूर्णता व सफलता को विभिन्न आयामों से आँकते है, उनमें कुछ जीवन में आदर्श एवं व्यवहार के मेल को जीवन की संज्ञा देते हैं जबकि कुछ उसे ही जीवन कहते हैं जो समयानुसार हो, साथ ही व्यक्तिगत जीवन मे दैहिक आनन्द से ओत-प्रोत हो और इस प्रकार व्यक्ति-गत जीवन के सुख की प्राप्ति तक ही उनके जीवन की सफलता सुनिश्चित मानते हैं।

जीवन वही है जहाँ सौन्दर्य हो। सौन्दर्य वहाँ ही सम्भव है जहाँ शुभ का साहस से वरण हो। शुभ भी वही है जहाँ प्रेम का स्वरूप हो। इसी प्रकार प्रेम एक ऐसा आधार है जो दूसरो के लिए अधिकाधिक करने व अपने लिए कम से कम माँगने हेतु तत्परता का भाव लिये हुए हो। सच्चाई तो यह है जीवन बिना प्रेम के अपूर्ण है, बिना सद्भावना व स्नेह के रिक्त है। अतः जीवन मे जहाँ रिक्तता का आभास हो, वहाँ उदारता व त्याग का आदर्श व्यवहार्य हो जाता है क्योंकि यही प्रेम के स्वरूप को स्पष्ट रूप से अंकुरित करता है।

बहुतो को यह शिकायत करते सुनता हूँ कि उन्हें कोई प्रेम नही करता, लेकिन मेरा यह अभिमत है कि आप प्रेम करना नही जानते हो, इसी प्रकार कुछ लोग यह कहते हैं कि जीवन ने उन्हें निराश कर दिया है, यह सत्य नही है, जीवन को उन्होने निराश कर दिया है! कोलम्बस ने अपने जीवन को साहस, बलिदान व त्याग का स्वरूप ही माना, और वह वही कर पाया जो कुछ चाहता था, अर्थात् जीवन में सौन्दर्य की उपलब्धि तभी सुनिश्चित है जबकि मानव अपनी अन्तरात्मा से किसी शुभभाव को लेकर आगे बढ़े, और अपने आत्मविश्वास व अदम्य साहस के साथ इसकी पूर्ति-हेतु जीवन की समग्र शक्ति को उड़ेल दे। जीवन वही है जो सदैव सक्रिय हो, जागरूक हो। निष्क्रियता मृत्यु का साक्षात् स्वरूप है। अतः कोई भी व्यक्ति जो जीवन की वास्तविक परिभाषा से स्वयं को सिक्त करना चाहता है

अहर्निश कुछ करता ही रहे, और यह ध्यान रखते हुए कि जो कुछ कर रहा है वह शुभ है व उसका आधार भी शुभ है। हम किसी शुभ कार्य की पूर्ति के दंभ में यदि अशुभ मार्ग का अनुसरण करते है तो निश्चित है कि वह जीवन जीवन नही अपितु बोझ मात्र है जिसे हम विवशता से उठाकर किसी भी प्रकार से व्यतीत करना चाहते हैं। इस प्रकार यापन किया हुआ जीवन जीवन नही अपितु बड़ी ही लापरवाही से किया गया वह वरण है जो हमारे व शेष समाज के व्यक्तिगत व सामाजिक जीवन को कुंठित करता है। अतः जीवन वही है जो मस्ती से व सक्रियता से जिया जाय, और साथ ही अपने-आपको निष्ठा से उसकी पूर्ति करने हेतु प्रयास किया जाय। श्रेय मार्ग का वरण व हेय मार्ग का त्याग यही जीवन के आधार होने चाहिए! रिक्तता ससार मे नही हम में है, जब तक हम रिक्त है तब तक दूसरो की रिक्तता को कोसते रहेगे, और जब हम सद्गुणों से सिक्त रहेगे तो हम दूसरो की रिक्तता को कोसने के बजाय उन्हें भी सिक्त करने हेतु प्रयास करने को उद्यत होगे। अतः जीवन को सौन्दर्यमय बनाने हेतु पहले सद्गुण-रूपी पुष्पो से सुगन्धमय बनाइये और इस हेतु सत्य, प्रेम, साहस, निष्ठा आदि आधारो से अलंकृत कर अपने-आपको पूर्ण बनाने का सफल प्रयास करिये। जिस क्षण प्रत्येक इन्सान को अपनी रिक्तता का आभास हो जायगा, उसके जीवन में उसी क्षण से सिक्तता की शुरुआत हो जायगी, और वह फिर इसी प्रकार अहर्निश बढ़ते रहने पर अपने जीवन की पूर्णता व अत्यानन्दानुभूति को स्पर्श करेगी।

अतः प्रबुद्ध वर्ग का यह दायित्व है कि वह अपनी बौद्धिक शक्ति का समुचित उपयोग कर जीवन के सही मूल्यों का वरण करने का शुभ प्रयास करे।

अन्त मे हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते है कि हमे जीवन-सौन्दर्य का बोध तभी होगा, जब हम जीवन को सौन्दर्यमय बनाने हेतु अपने अभावो की ओर जागरूक रहकर उन्हें अधिकाधिक संतुलित एवं उपयोगी बनायेंगे। यही जीवन-सौन्दर्य का प्रारम्भ होगा, और हमारा मार्ग श्रेय बन जायेगा।

हंसने वाले दीर्घायु होते हैं

देवप्रकाश कौशिक

चिकित्सा-विज्ञान ने उन्नति अवश्य की है किन्तु उससे अधिक उन्नति की है मानसिक रोगों ने। आज आपको कम से कम नब्बे प्रतिशत लोग चिन्ता, क्रोध, क्षोभ आदि मानसिक विषमताओं से ग्रस्त मिलेंगे। चिन्ता, जैसाकि आप जानते हैं, चिता के समान है। अन्तर केवल इतना है कि चिता मुर्दे को जलाती है और चिन्ता जीवित मनुष्य को। आप भी क्रोध, चिन्ता या क्षोभ से अवश्य ग्रस्त होंगे। आइये, हम आपको एक फॉरमूला बतायें इन सबसे मुक्त होने का। फार्मूला है बहुत छोटा किन्तु है बड़ा कारगर। फॉर्मूले का नाम है—'हंसी'। जी हां, हंसी आपके क्रोध, चिन्ता तथा क्षोभ को ऐसे भगा देगी जैसे मुक्तिवाहिनी तथा भारतीय सेना के जवानों ने पाक सैनिकों को भगा दिया।

स्वास्थ्य के लिए हंसी उतनी ही आवश्यक है, जितनी जीवन के लिए वायु। अंग्रेजी की एक कहावत है—'हंसो और मोटे हो जाओ।' पाश्चात्य देशों के लोग हंसी के लिए बड़ी से बडी कीमत देते हैं। वहां हास्य व व्यंग्य-लेखकों को अन्य लेखकों से अधिक पारिश्रमिक मिलता है। 'पंच' पत्रिका जो कि इंगलैण्ड से प्रकाशित होती है, संसार की सबसे प्रसिद्ध व्यंग्य-पत्रिका है। अन्य पत्र-पत्रिकाओं मे भी हास्य तथा व्यंग्य का पर्याप्त मसाला रहता है। कारण, आज यदि पाश्चात्य देश के लोगों को हास्य तथा व्यंग्य की खुराक नहीं मिले तो आधे से अधिक लोग पागल हो जायें, क्योंकि मशीनी सभ्यता ने उनका जीवन यंत्र के समान ही यांत्रिक तथा नीरस बना दिया है। अंग्रेजी कवि बायरन ने हंसी के महत्त्व को पहचाना है। उसने कहा है—"मैं प्रत्येक नश्वर चीज पर हंसता हूं और इसलिए हंसता हूं कि मैं रो न पड़ूं।" बहुत बड़ा मनोवैज्ञानिक सत्य कहा है बायरन ने। यदि आप हंसते हैं तो आपको रोना आ ही नही सकता। हंसी आपको सुख देती है। जब आप हंसते हैं तो आपके साथ सब लोग हंसते हैं किन्तु जब आप रोते हैं तो आपका साथ कोई नही देता और आप अकेले रोते हैं। हंसी हंसकर आप अपने दुःखों को उसमें डुबो सकते हैं। हार्टले कॉलरिज ने

कहा है—'हँसी हँसना भी एक कला है जिसमे कि आप अपने दिल की दुःख-भरी चीखों को डुबा सकते है।' आपने जिन व्यक्तियों को हँसते देखा होगा उन्हें अवश्य ही स्वस्थ तथा सुखी पाया होगा। रोने वाले मनुष्य अधिकतर अस्वस्थ ही होते हैं। यदि कोई व्यक्ति दुःखी है और वह हँसता है तो उसका दुःख आधा भी नहीं रह जाता। मैंने नब्बे वर्ष के एक सिक्ख को देखा। वह लाठी के सहारे चलता और पन्द्रह-बीस कदम चलकर रुक जाता, क्योंकि इससे अधिक वह चल ही नहीं पाता। एक दिन वह मुझे रास्ते मे मिला। जब मैंने उसकी यह स्थिति देखी तो मैं रुक गया। वह हँसते हुए बोला, "प्राजी, मैंनु चलदे-चलदे ब्रेक लग जान्दा है।" कहने की आवश्यकता नहीं कि मैं हँसे बिना न रह सका। जो व्यक्ति ऐसी दशा में भी हँस सकता है वह क्यों नहीं सुखी रहेगा। बाद में मुझे मालूम हुआ कि उस सिक्ख की यह दशा पिछले दस वर्ष से है। यदि वह हँसता नही तो क्या वह अभी भी जीवित रह सकता ?

हँसने वाले व्यक्ति दीर्घायु होते है। जॉर्ज बर्नार्ड शॉ ९५ वर्ष जीवित रहे। अलेक्जेण्डर पोप भी ८६ वर्ष जीवित रहे। दोनों ही हँसते थे और लोगों को हँसाते थे—व्यंग्य व हास्य लिखकर। शॉ से किसी महिला ने विवाह का प्रस्ताव यों रखा, "आप बुद्धिमान है और मैं सुन्दर। यदि हम विवाह कर लें तो हमारी सन्तान आप-जैसी बुद्धिमान तथा मेरी-जैसी सुन्दर होगी।" शॉ ने संक्षिप्त उत्तर दिया, "और यदि कहीं इसका उल्टा हो गया तो ?" वास्तव में शॉ का अभिप्राय था कि यदि सन्तान उन-जैसी असुन्दर व उस महिला-जैसी मूर्ख हो, तो क्या होगा।

कुछ लोग प्रश्न कर सकते है—हँसें कैसे ? हमारा उत्तर है कि अपने प्यारे भारतवर्ष मे हँसी के स्रोतों की कमी नहीं है। हमारे देश में तो अभिनेता तथा अभिनेत्रियाँ ऐसा अभिनय करते है कि दुःखान्त फिल्म भी हँसी से भरपूर हो जाती है। यदि आप किसी फिल्म को अच्छा समझकर देखने जाते हैं और फिल्म बोर निकलती है तो अपनी स्वयं की मूर्खता पर ही हँसिये। यदि आप अपने चारों ओर नज़र दौड़ायें तो आपको हँसी के ढेर सारे स्रोत नज़र आयेंगे। यदि दुर्भाग्य से आपकी नजर कमजोर है और आपको हँसी के स्रोत नजर नही आते है तो आइये हमारे साथ। यह देखिये इस विद्यालय में एक सज्जन भाषण झाड़ रहे हैं समय की बचत पर, और भाषण पिछले दो घंटे से दे रहे हैं। पहले तीन कालांशों का वक्ता महोदय की कृपा से खून हो ही गया और भाषण अभी अधूरा ही है। क्या आपको हँसी नहीं आयी ? यदि हँसी नहीं आयी तो आइये हम आपको बाज़ार ले चलें। वह देखिये एक कुरूप महिला आ रही है, एक बड़ा-सा जूड़ा लगाये। होंठों पर गहरी लिपस्टिक और गालों पर रूज लगा हुआ है। कपड़े इतने तंग कि कदम छः इंच से अधिक नही पड़ सकते। उसकी अदा देखकर

यह अनुमान आसानी से लगाया जा सकता है कि वह अपने-आपको किसी ब्यूटी क्वीन से कम नहीं समझ रही है। तभी एक गाय उसकी ओर दौड़ी आती है। महिला उस गाय से बचने के लिए दौड़ रही है पर तंग कपड़ों के कारण दौड़ा नहीं जा रहा है। यदि आप में थोड़ी-सी भी कल्पना-शक्ति है तो दृश्य की कल्पना कर आप हँसे बिना नहीं रह सकते।

प्राचीन काल में राजा-महाराजा अपने दरबार में विदूषक रखते थे। ये विदूषक प्रायः काफी बुद्धिमान होते थे। बीरबल अकबर का विदूषक था। शेक्सपियर के 'किंगलियर' में भी 'फूल' (Fool) नामक पात्र है जो कि एक बहुत बुद्धिमान विदूषक है। आप कहेंगे कि आजकल शासन में विदूषक नहीं है। मेरे विचार से तो भारतीय शासन में विदूषकों की भरमार है। अन्तर केवल इतना है कि ये विदूषक क्रिया-कलाप में प्राचीन विदूषकों से कुछ भिन्न कोटि के होते हैं। आपने समाचारपत्र में पढ़ा होगा कि एक मंत्री महोदय ने अपनी पुत्री के विवाह के लिए आसपास के क्षेत्रों की बिजली तीन दिन तक बन्द रखी। विवाह में ऐसी रोशनी हुई कि पहले कभी भी नहीं हुई थी। सारे नियमों को तोड़कर दावत में हजारों आदमियों को खाना खिलाया गया। यह हँसी का विषय नहीं है तो क्या है ?

कुछ त्योहार हँसी के लिए मनाये जाते हैं—जैसे होली तथा फर्स्ट अप्रैल फूल। होली में तरह-तरह के स्वांग रचे जाते हैं जिन्हें देखकर हँसी का फव्वारा छूट पड़ता है। 'अप्रैल फूल' में आपको इस प्रकार बेवकूफ बनाया जाता है कि आपको अपनी मूर्खता पर स्वयं हँसी आती है। यदि आप क्रोध में हों तो हँसी आपकी रक्षा करती है। एक बार एक शरारती छात्र को अध्यापक ने किसी शरारत पर कक्षा से बाहर निकाल दिया। उस समय अध्यापक बहुत ही क्रोध में थे। छात्र ने जब क्षमा माँगी तो उनका क्रोध इतना बढ़ गया कि चेहरा तमतमाने लगा। तभी एक अन्य छात्र खड़ा होकर बोला, "सर, क्षमा कर दीजिये बेचारे को, आपका ही लड़का है, आपको पला-पलाया लड़का मिल रहा है।" उसका इतना कहना था कि सब छात्र हँस पड़े। अध्यापक महोदय भी हँसे बिना न रह सके। वास्तव में अध्यापक महोदय की कुछ दिनों बाद शादी होने वाली थी। उन्होंने मुसकराकर छात्र को क्षमा कर दिया। यदि उन्हें हँसी नहीं आती तो स्थिति गम्भीर तो थी ही, दुःखान्त भी हो सकती थी।

कोई क्या कहेगा !

▢

हेमप्रभा जोशी

प्रत्येक युग और समाज मे इंसान की यह समस्या कि कोई क्या कहेगा उसकी उन्नति के मार्ग को अवरुद्ध करती आयी है। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे हमारी इच्छा, हमारी सुविधा और हमारी पसन्द का कोई महत्त्व ही नही है। हमने कभी यह सोचने का कष्ट ही नही किया है कि हमारे मस्तिष्क में उठे इसी एक प्रश्न ने हमें क्या-से-क्या बना दिया है। यदि कभी सोचा भी है तो हमने अपने को अपंग ही पाया है। कोरा सोचना कोई महत्त्व नही रखता है। सही दिशा मे सोचकर उस ओर बढना ही महत्त्व रखता है।

उठते-बैठते, सोते-जागते, चलते-फिरते, खाते-पीते—यों कहना गलत न होगा कि हर कार्य करने से पूर्व, हमारे मस्तिष्क में यह प्रश्न उठता है कि अमुक कार्य करते हुए किसी ने देख लिया तो कोई क्या कहेगा ?

मेरी एक सहेली कॉलेज मे पढ़ती थी। वह मुझे एक दिन अपने कॉलेज में ड्रामा दिखलाने ले गयी। कुर्सियों पर हम जा बैठे थे। कुछ देर बाद उसे प्यास लगी। मेरे आग्रह पर भी वह उठी नहीं। पर जब मुझे प्यास लगी, तो वह मेरे साथ एक पानी के कूलर तक आयी। मैंने पहले उससे पानी पीने को कहा। वह बोली—'आप पीजिये।' कारण पूछा तो बोली—'हाथ से पानी पीते हुए कोई देख लेगा तो क्या कहेगा ?' मैं कुछ पलों तक तो उसे आश्चर्य-दृष्टि से देखती रही। फिर पानी पीकर उसे कुछ देर तक पानी पीने का आग्रह करती रही। पर वह न मानी। प्यासी ही लौट पड़ी। यह हाल तो तब था, जब वह एक मध्यमवर्गीय परिवार की छत्रछाया तले जीवन बिता रही थी। काश, यदि वह किसी रईस के घर पैदा हुई होती तो ?

जरा सोचिये जब हम इतने झूठे दिखावे को भी प्रोत्साहन देंगे तो हम प्रगति कैसे करेंगे ? यही कारण है कि आज हम हमेशा रोते रहते हैं। कभी किसी समस्या को रोते है तो कभी किसी समस्या को। सच पूछो तो हमने अपनी इच्छाओं, आवश्यकताओं वगैरह को इतना अधिक बढ़ा लिया है कि उनकी पूर्ति

करना कठिन ही नही असम्भव लगता है। लेकिन फिर भी हम भेड की चाल से चले जा रहे हैं। हमारे तन-मन को यह बात घुन की तरह से खाए जा रही है कि दूसरे ऐसा पहनते है, खाते है और रहते है, इसलिए हम भी वैसा ही पहनें, खायें और रहें । नही तो कोई क्या कहेगा ! हम पलभर को यह नही सोचते कि इस तरह आँख मीचकर क्यो चलें ? दूसरो की नकल करने से लाभ क्या ? हमारी चादर कितनी लम्बी-चौडी है ? वगैरह । पर जब हमारी किसी बड़े झटके से कुछ देर के लिए आँखे खुलती हैं और हम अपने को मुसीबतों से घिरा पाते है तो हम दूसरों को बुरा कहने लगते हैं। पर यदि बारीकी से हम अपनी परेशानी, अपने दु.ख व अपने रोने का कारण जानें तो हम मुख्यरूप से स्वयं को ही दोषी पायेंगे । फिर भी हम यदि आँख मूंदकर ही चलेंगे तो हमारा क्या-से-क्या रूप होगा, यह भी देख लीजिये। पाँच-छ. वर्ष पूर्व की बात है । हम एक बिगड़े रईस की हवेली के एक हिस्से में किरायेदार के रूप मे रहते थे । बँटवारे में उस रईस के हाथ बहुत संपत्ति लगी थी । फिर क्या था ? रहने का आपका स्तर और ऊँचा उठ गया । देखते ही-देखते आपको पतंगबाजी के शौक ने आ घेरा । हजारो रुपया जब उस शौक की अग्नि मे स्वाहा हो गया तब आप, उसकी पूर्ति हेतु कहिये या नए शौक के कारण कहिये, सट्टे के मैदान में आ कूदे । काफी सम्पत्ति जब आपने उसमे भी खो दी तब आपकी आँखें खुली। जैसे-तैसे बची-खुची सम्पत्ति से आपने मोटरो की मरम्मत का धन्धा शुरू किया। अब जो कार ठीक होने आती आप या आपका परिवार उसी में घूमता दिखाई देता । यहाँ तक देखा गया कि आप पान खाने भी जाते तो कार मे जाते। कार से उतरते तो उसी रईसी अन्दाज से उतरते, जैसे उनकी खुद की कार हो । कहने का तात्पर्य यह कि आपका स्टेण्डर्ड तो घटने के बजाए बढता ही रहा और कर्ज चढता रहा । एक दिन वह भी आ गया जब आपके दरवाजे पर आकर कर्जदार आपको आवाजें लगाने लगे। यह नौबत क्यो आयी ? गहराई से विचार किया जाए तो हम उन बिगडे रईस व उनके परिवारवालो के मस्तिष्क में यही प्रश्न कि कोई क्या कहेगा विकराल रूप मे उभरता पायेंगे ।

ऐसे एक नही, अनेक इस रोग के रोगी हमारे इर्द-गिर्द घूमते रहते है । यदि गौर करें तो हो सकता है कि हम भी उन रोगियों मे से एक हों ।

यह कहना गलत न होगा कि इस कमर-तोड़ महँगाई, इस बढती चोर-बाजारी के पीछे, हमारे मस्तिष्क मे गलत रूप से उठ इस प्रश्न का कि कोई क्या कहेगा, गहरा हाथ है । तभी फैशनेबुल लोगों की संख्या दिन-प्रति-दिन बढती जा रही है । नए-नए फ़ैशन, नई-नई चीजें सामने आ रही हैं । हम उनके पीछे भागे जा रहे है, भले ही हमारी खुशी पीछे छूटती जा रही है । दिखावटी

चीज़ें दिखावटी खुशी ही लायेंगी। यह जानकर भी हम कंटीले रास्तों की ओर दौड़े जा रहे हैं। उलझेंगे नहीं तो और क्या होगा ?

प्रगति की ओर अग्रसर होना बुरा नहीं, बुरा है बुराई की ओर बढ़ना। हर कदम उठाने से पहले, किसी की आलोचना की चिंता किये बिना यदि हम यह सोच लें कि हमें कहाँ जाना है, क्या करना है, सही मायनों में कैसे करना है, तो सच मानिये कि हमारे पास यह बिन बुलाए मेहमान की-सी बेचैनी फटकेगी नहीं। हमारे स्वागत के लिए प्रसन्नता, उन्नति और मानसिक शांति द्वार पर खड़ी मिलेगी।

जरा सोचिये, हमारा भी कोई अस्तित्व है। हमारी भी कोई पसन्द है। तो फिर क्यों न हम अपनी सही इच्छानुसार जियें ? इसका अर्थ यह नहीं कि हम समाज से अलग हो जायें, अपनी ढपली अपना राग ही अलापें; बल्कि इस समाज में ही ऐसे रहें, जिससे लोगों के सामने एक आदर्श प्रस्तुत हो। भटके राही एक दिन कह उठें कि वास्तव में जीवन हो तो ऐसा हो। तब हम ही सुखी न होंगे, हमारा परिवार सुखी होगा, हमारा देश सुखी होगा।

विचार पर विचार

□

विश्वनाथ पाण्डेय 'प्रणव'

जन्तु जगत में मनुष्य इसलिए श्रेष्ठ माना जाता है कि वह अत्यन्त विचारशील प्राणी है। उसका मस्तिष्क निरन्तर किसी-न-किसी समस्या पर विचार करता रहता है। शायद इसीलिए मानव मस्तिष्क दुनिया की सबसे आश्चर्यजनक और मूल्यवान वस्तु है। मनुष्य होने के नाते हम अनेक पहलुओं पर सोचते अथवा विचारते है। किन्तु, हमारे मस्तिष्क में कदाचित ही यह बात कौंधती है कि विचार कहते किसे हैं ? विचार अपने आप में है क्या ? शायद हमें इसकी आवश्यकता भी नहीं पड़ती।

विचार जो अपने आप में समस्त चिन्तनशील जगत को समाविष्ट किये हुए है, विभिन्न प्रकार के भावों का संयोजन कर उन्हें तर्क-वितर्क द्वारा आगे बढ़ाते रहनेवाली एक श्रृंखला है, जिसका उत्पत्ति-स्थान है—मस्तिष्क। मस्तिष्क में ही विचार उठते है, सागर की ऊर्मियों की भाँति जो अनवरत चलते रहते हैं, तब तक जब तक कि मस्तिष्क पूर्ण विश्राम की स्थिति में नहीं आ जाता। जिस प्रकार जल-तरंगें जल-तल पर बनती हैं और बिना जल के तरंगों की कल्पना नहीं की जा सकती, उसी प्रकार विचार भी सर्वदा भावों की पृष्ठभूमि से उपजते हैं और बिना किसी भाव के विचार का अस्तित्व स्वीकार्य नहीं।

विचार कभी न नष्ट होनेवाली मूक भावाभिव्यक्ति की अवस्था है, जिसका मन्थन केवल मस्तिष्क मे ही होता है। यह एक बार निर्मित होने के पश्चात् कभी समाप्त नहीं होता। यहाँ, शायद कतिपय व्यक्ति इस तर्क से असहमत हों, इसीलिए इसे अच्छी तरह समझ लेना आवश्यक है। कल्पना कीजिए, हम चार व्यक्ति साहित्य-चर्चा कर रहे हैं। हममें से प्रत्येक चर्चान्तर्गत इतना तल्लीन है कि उसे बाहरी दुनिया का भान ही नहीं रह गया है। साहित्य का रसास्वादन हमें चर्चा बढ़ाते रहने के लिए निरन्तर प्रेरित किये हुए है और हम उसमें पूर्णरूपेण विभोर हैं। इसी बीच कोई बाहरी व्यक्ति आकर हममें से किसी एक को जोर से पुकारता है और हमारी चर्चा का क्रम टूट जाता है।

समय सामान्य रूप से कोई भी कह सकता है—सारा मजा किरकिरा कर दिया, या सारा गुड़गोबर कर दिया। पर सोचिये, उसने आपके विचारों को कब नष्ट किया है ? केवल एक बात कही है, एक दूसरा आधार दिया है जिस पर आप दूसरी तरह से विचार करने लगे हैं। इसे हम यों भी कह सकते हैं कि उसने चर्चा की पृष्ठभूमि बदलकर एक नयी पृष्ठभूमि प्रदान की है और हमारे पूर्व के विचार जहाँ थे, अपनी अवस्था में वहीं छूट गये हैं। और हम नवीन विषय या पृष्ठभूमि पर नवीन विचारों के साथ अग्रसर हो गये हैं। इस प्रकार विचार कभी न नष्ट होनेवाली, भावों को आगे बढ़ाती रहनेवाली एक तार्किकावस्था है। जिस प्रकार भाव कभी नष्ट न होकर विभिन्न अवस्थाओं में परिवर्तित होते रहते हैं, उसी प्रकार विचार भी कभी नष्ट न होकर बदलते रहते हैं।

विचार और चिन्तन—सामान्यावस्था में हम विचार व चिन्तन को एक ही अर्थ में स्वीकारते हैं। दोनों में पर्याप्त समानता होते हुए भी मूलरूप से अन्तर है। चिन्तन का आधार हमेशा किसी प्रकार की चिन्ता होती है। इसी प्रकार एक शब्द 'सोचना' भी है। यह भी विचार से साम्य रखने वाला शब्द है। किन्तु इसका भी आधार सामान्य भाव न होकर एक विशिष्ट भाव है—सोच। लेकिन जब 'चिन्ता' या 'सोच' से उद्भूत उसकी विभिन्न अवस्थाओं पर हम मनन करने लगते है, तो उसके कारणों पर प्रभाव डालनेवाले विभिन्न अन्य भाव जिन्हें हम सहभाव भी कह सकते है, निर्मित होने लगते है और इन भावों को बढ़ाते हुए जब हम सामान्य पृष्ठभूमि पर उतर आते है, तब हम चिन्तन करना या सोचना छोड़कर विचारने लगते है। कहने का तात्पर्य है कि चिन्तन करना या सोचना तभी तक माना जा सकता है, जब तक उसमें चिन्ता या सोच का भाव विद्यमान हो। जैसे ही मूल भाव (चिन्ता अथवा सोच) समाप्त हुए उक्त दोनों प्रक्रियाएँ विचारने की प्रक्रिया के अन्तर्गत आ जाती हैं। इस प्रकार विचारने की प्रक्रिया भाव-विशेष पर आधारित न होकर सामान्य भावों पर आधारित होती है, जबकि चिन्तन अथवा सोचने की प्रक्रिया भाव-विशेष पर आधारित रहती है।

विचार के स्वरूप—विचार की दो दिशाएँ है—धनात्मक व ऋणात्मक। धनात्मक दिशा वह होती है जिसमें से होकर गुजरते समय विचारक को फूंक-फूंककर पैर रखने पड़ते हैं। इससे उद्भुत विचार सर्वगुणयुक्त, तर्कसम्मत एवं सर्वथा कल्याणकारी होते हैं। इसे मैं जन-हितकारी एवं सर्वांगपूर्ण विचारों की उत्तम दिशा की संज्ञा दूंगा। किन्तु इसके लिए मन की एकाग्रता, निर्लिप्तता एवं विवेक-शक्ति की आवश्यकता पड़ती है। दूसरी दिशा ठीक इसके विपरीत, अमंगलकारी है—विचारक के लिए भी और समाज के लिए भी। व्यक्ति के विचार जब देश-काल

की आवश्यकताओं के अनुरूप न होकर उनसे भिन्न दृष्टिकोणवाले होते है, तब वे ऋणात्मक दिशा की ओर उन्मुख हुए विचार माने जाते हैं। चूंकि हमारी आवश्यकताएँ देश-काल की आवश्यकताओं से भिन्न न होकर उन्हीं का अंश है, इसलिए देश-काल की आवश्यकताओ के प्रतिकूल विचार स्वयं हमारे प्रतिकूल प्रभाव डालनेवाले विचार कहे जायेंगे, भले ही इस प्रकार के विचारक को यह बात युक्तियुक्त न प्रतीत हो। यही यह विचारणीय भी हो जाता है कि ऐसे विचारो का अस्तित्व ही क्या जिनका हमे परिणाम तक न मिले, जो हमारे अनुकूल न हों! आप कहेंगे—क्या ऐसे भी विचार होते है? मैं स्पष्ट शब्दों मे कहूँगा—हाँ, स्वार्थपूर्ति के लिए किये गए व्यापार, उन्हे साकार बनाने के लिए अपनाये जानेवाले विविध साधन और इन सबको सुसंचालित करने के लिए इन पर विविध प्रकार से किये गये विचार—यह सब क्या है? ऋणात्मक दिशा की ओर उन्मुख विचार ही तो है! इन दो दिशाओ के आधार पर ही हम विचार के दो स्वरूप निर्धारित कर सकते है—(१) सपुष्ट, सुप्रिय एवं जन-हितकारी विचार, (२) अपुष्ट, अप्रिय एवं अकल्याणकारी विचार। सपुष्ट विचारों का अर्थ है—सर्वप्रकारेण पुष्ट अर्थात् जिनकी पुष्टि हो सके। किन्तु, विचारों की पुष्टि तभी हो सकती है जब वे पूर्णरूपेण शोधित व परिमार्जित हों और उनमे तर्क के लिए स्थान न रहने पाये। इस प्रकार के विचारों का प्रादुर्भाव केवल परिपक्व मस्तिष्क से ही सम्भव है। अवस्था के साथ मस्तिष्क भी परिपक्व होता है, यह मान्यता काफी प्रचलित है। किन्तु, इसमें कुछ सन्देह रह जाता है। केवल अवस्था के बढ़ते रहने से मस्तिष्क की परिपक्वता सम्भव नही है। मनोविज्ञान के अनुसार सभी मस्तिष्क एक-जैसे नही हो सकते। उनका भी श्रेणी-विभाजन किया है। मस्तिष्क की परिपक्वता का बौद्धिक क्षमता से घनिष्ठ सम्बन्ध है। बौद्धिक स्तर की दृष्टि से जो व्यक्ति जितना सक्षम होगा, उसका मस्तिष्क उतना ही परिपक्व माना जायेगा। प्रायः हम बौद्धिक स्तर की श्रेष्ठता का अनुमान उच्च शिक्षा से लगाते हैं, किन्तु यह हमारी बहुत बडी भूल है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना उत्तम होगा कि उच्च शिक्षा प्राप्त करने का बुद्धिमान बनने से दूर का सम्बन्ध है, जैसा कि हमे अपने सामाजिक जीवन मे दृष्टिगोचर होता रहता है।

सपुष्ट विचार व्यक्ति को प्रिय लगें, यह आवश्यक नही। इनमें तर्क का कोई स्थान नही होता, किन्तु कई बार कटु-सत्य से अभिभूत होने के कारण ये अप्रिय लगने लगते हैं। विचार सबको प्रिय लगें, इसके लिए आवश्यक है कि उनमें जनहित के भाव भी समाहित हो। सर्वप्रकारेण पुष्ट एवं सर्वहितकारी विचार ही सुप्रिय होते है, समाज का सही मार्गदर्शन कर सकते हैं, अन्यथा इसका विपर्यय होता है।

मस्तिष्क की अपरिपक्वता के फलस्वरूप जो विचार बनते हैं, वे सर्वथा खोखले होते हैं, अर्थात् उनकी पुष्टि नही हो पाती, उनमें तर्क के लिए पर्याप्त स्थान रहता है, त्रुटियों का आधिक्य तो होता ही है। परिणामतः ऐसे विचार अकल्याणकारी सिद्ध होते हैं। इसीलिए ऐसे विचार अपुष्ट, अप्रिय एवं अकल्याण-कारी विचार कहलाते हैं।

मेरे मतानुसार संपुष्ट विचारों के लिए यह आवश्यक है कि जिस विषय पर विचार किया जा रहा है, उसके विभिन्न पहलुओं पर तर्क किया जाय; अच्छाइयों एवं बुराइयों का लेखा-जोखा रखते हुए अत्यन्त सतर्कता के साथ केवल उन्हीं गुणों को विचारों में पिरोया जाय जो सर्वकल्याणकारी एवं तर्क द्वारा अकाट्य हों, अर्थात् सत्यम्, शिवम् एवं सुन्दरम् जैसे शाश्वत मूल्यों से अभिभूत हों।

सड़क की आर्त्त पुकार

□

वसंतीलाल महात्मा

संध्या का सुहावना समय था। प्रतिदिन के संध्या-भ्रमण के लिए जाने का विचार कर रहा था कि आज का यह संध्या-भ्रमण किस दिशा में हो ? सोचते-सोचते विचार आया कि आज उस सड़क की ओर चला जाय जिसका अभी-अभी निर्माण हुआ है और जो एक सुन्दर सरोवर के किनारे-किनारे होकर चली गई है। अतः उसी नव-निर्मित सड़क की ओर प्रस्थान किया। जब उस सड़क पर पहुँचा तो उसकी स्वच्छता एवं सुन्दरता देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। वस्तुतः सड़क बहुत अच्छी और समतल रूप में बनाई गई थी। ऐसी सड़क पर चलने में कहीं भी ऊँचा-नीचा नहीं था। यदि कोई कार या बस उस सड़क पर होकर निकले तो कार या बस में बैठनेवाली सवारियों के पेट का पानी तक न हिले। इस प्रकार मैं उस नव-निर्मित सड़क की मन ही मन प्रशंसा कर रहा था। साथ ही उसके भाग्य की सराहना भी कर रहा था कि इस सड़क को हजारों-लाखों यात्रियों को अपने-अपने गन्तव्य स्थानों पर सुविधापूर्वक और सुरक्षित पहुँचाने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। इतने में मेरे कानों में एक धीमी परन्तु आर्त्त पुकार सुनाई देने लगी। मैंने आश्चर्यवश अपने चारों ओर देखा पर कोई भी नहीं दिखायी दिया। तब उस आर्त्त पुकार ने ही अपना रहस्य प्रकट करते हुए स्पष्ट किया, "हे पथिक ! यह जो आर्त्त पुकार तुम्हारे कानों में आ रही है, वह और किसी की नहीं अपितु मुझ नव-निर्मित सड़क की ही है जो तुम्हें अपनी दुःख की बात सुनाने को आतुर हो रही है।" यह सुनकर मैं और भी अधिक विस्मय में पड़ गया औरसोच ने लगा कि यह नवीन सड़क इतनी दु.खी क्यों है ? इसे कौन-सा दुःख व्याप्त है ? मेरे इन प्रश्नों के उत्तर में सड़क निम्नलिखित ढंग से बोली—

"हे यात्री ! जिस दृष्टिकोण से तुम मेरी प्रशंसा कर रहे हो और साथ ही मेरे भाग्य की सराहना कर रहे हो वह उचित ही है। परन्तु मैं जिस दृष्टि-कोण से इतनी दुखी होकर जो आर्त्त पुकार कर रही हूँ, वह भी पूर्णरूप से उचित ही है क्योंकि इस विश्व में पूर्ण सत्य किसी पर भी प्रकट नहीं होता है।

प्रत्येक व्यक्ति प्रत्येक वस्तु के प्रति अपनी-अपनी रुचि एवं भावना के अनुकूल अपने-अपने विचार अभिव्यक्त करता है। अत. इन अभिव्यक्तियों में विषमताओं का होना पूर्णरूप से स्वाभाविक है। इसीलिए प्रत्येक व्यक्ति की अभिव्यक्ति अपनी-अपनी जगह उचित ही जान पड़ती है। अतः मैं इतनी दुःखी अपने निजी दृष्टिकोण से ही हूँ। जहाँ आप मेरे भाग्य की सराहना कर रहे हैं वहाँ मैं अपने निर्माण की प्रक्रिया को देखकर आठ-आठ आंसू रो रही हूँ। आप मेरे दोनों ओर गहरे-गहरे गड्ढो की पक्तियाँ नही देख रहे हैं? और ये गहरे गहरे गड्ढे ही मेरे दु ख के वास्तविक कारण हैं। मैं इसे अपने दुर्भाग्य के अतिरिक्त और समझ ही क्या सकती हूँ कि मेरे निर्माण मे मेरे दोनों ओर की भूमि को खोद-खोदकर मुझे समतल और ऊँचा बनाया गया है। अब आप ही गहराई से चिंतन और मनन कीजिये कि इस प्रकार के शोषण से निर्मित मैं अपने भाग्य की सराहना करूँ या कोसूँ? वस्तुत ऊँचा बनने की प्रक्रिया में इस प्रकार का शोषण होना अवश्यंभावी है। अब आप कृपया, अपने समाज की ओर भी दृष्टिपात कीजिये। एक ग्राम की सौ या अस्सी झोंपड़ियो के मध्य दो या चार पक्के और ऊँचे मकान बने है तो यह निश्चित है कि उन पक्के और ऊँचे मकानों के अस्तित्व में उन सौ या अस्सी झोंपड़ियो का शोषण ही उभरा हुआ है। इसी प्रकार एक कस्बे में सौ-दो सौ पक्के और ऊँचे मकान है तो उन पक्के और ऊँचे मकानों के निर्माण में उस कस्बे की झोपडियों का और साथ ही पडोसी गाँवों के पक्के मकानो का शोषण सहयोगी है। इसी प्रकार शहर की गगनचुम्बी अट्टालिकाओं को इतना ऊँचा बनाने में उस शहर की समस्त झोपड़ियों और पड़ोसी कस्बों के समस्त पक्के मकानों का शोषण साकार रूप ग्रहण कर चुका है। यह शोषण की एक ऐसी प्रक्रिया है जो निरन्तर चलती रहती है। समाज में जो सबसे अधिक धनी है वे ही सबसे अधिक शोषणकर्ता भी है। उन लोगों का धनी बनना या ऊँचा उठना मेरे ही समान शोषण पर निर्भर है। जिस प्रकार मेरे निर्माण में आस-पास की भूमि का शोषण किया गया उसी प्रकार समाज मे जो भी व्यक्ति धनी बनता है वह निश्चित रूप से अपने पास-पड़ोस के कई व्यक्तियों का शोषण करके बनता है।"

अपनी आर्त्त पुकार अभिव्यक्त करके सडक तो यकायक मौन हो गई, पर वह मुझे शोषण की प्रक्रिया का एक ऐसा रहस्य प्रकट कर गई जिसने इस दिशा मे विशिष्ट रूप से सोचने एव मनन करने की प्रेरणा दी। इसी चिन्तन और मनन में उन समस्त दार्शनिकों, संतों व कवियों के वे स्वर गुंजार करने लगे जिनमे उन्होने एक स्वर से यह अभिमत व्यक्त किया था कि धनी बनने की आकांक्षा करना एक महान पाप है क्योंकि इस आकाक्षा मे यह भावना निश्चित रूप से सन्निहित है कि अनेक व्यक्ति निर्धन रहे और उनके शोषण से अपने को

धनी बनाया जाय। इसीलिए सन्त कबीर ने स्पष्ट रूप से उद्घोषणा की—

आधी और रूखी भली, पूरी तो संताप।
जो चाहेगा चूपड़ी, बहुत करेगा पाप॥

चुपड़ी रोटी अर्थात् मेवा-मिष्ठान्न जैसे पदार्थों का सेवन करने के लिए बहुत पाप अर्थात् निर्धनों का शोषण करना पड़ेगा। इसी संदर्भ में तथागत बुद्ध के जीवन का एक पावन प्रसंग स्वयंमेव स्मृति-पटल पर अंकित हो गया जो निम्नलिखित है—

एक बार बुद्ध अपने उपदेशों का प्रचार करते-करते किसी राजा की राजधानी में पहुँचे। वहाँ के एक बढ़ई के घर पर ठहरे। उन्होंने उस बढ़ई के यहाँ रूखा-सूखा भोजन बड़े चाव और प्रेम से किया। प्रातःकाल ज्योंही वहाँ के राजा को बुद्ध के आगमन और बढ़ई के घर ठहरने की सूचना मिली, वह स्वयं बढ़ई के घर जा पहुँचा। वहाँ पहुँचकर उसने महात्मा बुद्ध से अपने राजमहल में आकर भोजन करने का आग्रह किया। बुद्ध ने राजा को बार-बार मना किया कि हे राजन्! मैं आपके यहाँ भोजन करने में असमर्थ हूँ। पर ज्यों-ज्यों बुद्ध मना करने लगे, राजा का आग्रह बढ़ने लगा। अन्त में बुद्ध ने राजा के मन को रखने के लिए प्रातःकाल का भोजन उसके यहाँ करना स्वीकार कर लिया। जब बुद्ध राजमहल में पधारे तब हजारों दर्शक उनके साथ थे। राजा ने बुद्ध को आदरपूर्वक एक उच्चासन पर बिठाया और उनके सामने स्वर्ण-थाल में नाना प्रकार के व्यंजनादि परोसकर रख दिये। बुद्ध ने उस थाल में से एक लड्डू उठाया और उसको मुट्ठी में लेकर सभी दर्शकों के सामने दबाया। तमाम नगर-निवासियों को यह देखकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि लड्डू में से रक्त की बूँदें टपक रही हैं। तत्पश्चात् बुद्ध ने बताया कि मैं आपके यहाँ भोजन करने के लिए इसीलिए मना कर रहा था कि आपके भोजन में आपकी सम्पूर्ण जनता का शोषण निहित है और वही शोषण इस लड्डू में से रक्त की बूँदों के रूप में टपक रहा है। मैं किसानों, मजदूरों और कारीगरों के यहाँ भोजन इसलिए करता हूँ कि उनका रूखा-सूखा भोजन शुद्ध रूप में उनके परिश्रम का है और शोषण-रहित है।

यही कारण था कि ईसामसीह ने भी उपदेशों में निर्भीकता से घोषणा की—

"सुई की नोंक में से ऊँट का निकलना संभव हो सकता है; पर धनी का स्वर्ग में प्रवेश पाना नितांत असंभव है।"

ईसा ने धनी के स्वर्ग में प्रवेश पाने को नितांत असंभव क्यों कहा? स्पष्ट है कि धनी अपने धनोपार्जन में निर्धनों का जो शोषण करता है और तत्पश्चात् धन का नाना प्रकार के दुर्व्यसनों में जो उपभोग करता है उससे वह स्वर्ग का अधिकारी कदापि नहीं हो सकता है।

पैगम्बर मोहम्मद साहब ने भी इस्लाम धर्म के अनुयायियों को इस शोषण-रूपी पाप से बचाने के लिए दो मुख्य उपाय बताये। पहला यह कि वे अपनी वार्षिक आय का चालीसवाँ हिस्सा अर्थात् ढाई प्रतिशत नियमित रूप से दान में (जकात) देते रहें। दूसरा रुपयों को ब्याज पर उधार कदापि न दें।

महावीर स्वामी ने प्रत्येक जैन गृहस्थ को पंचव्रत का प्रण लेना अनिवार्य बतलाया है। ये पंचव्रत हैं—(१) अहिंसा, (२) सत्य, (३) अस्तेय, (चोरी न करना), (४) ब्रह्मचर्य और (५) अपरिग्रह। अपरिग्रह का अर्थ है आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का संग्रह न करना। स्वयं महावीर ने सब कुछ त्यागकर अपने अनुयायियों के सामने सर्वोत्कृष्ट आदर्श रखा। महावीर स्वामी का अपरिग्रह का सिद्धांत ही आज के युग का समाजवाद या साम्यवाद है। यदि अपरिग्रह के सिद्धांत को सम्पूर्ण जैन समाज व्यावहारिक रूप देता तो भारतवर्ष में समाजवाद बहुत पहले ही आ जाता।

राष्ट्रपिता गांधी जी ने भी अपरिग्रह के सिद्धांत पर बल दिया। उन्होंने आजीवन धोती एवं कुर्ते पर ही निर्वाह किया। वह पिंडोपजीवी जीवन से घृणा करते थे। वे जीवन में 'सादा जीवन, उच्च विचार' के समर्थक थे। उन्होंने शोषण-वृत्ति की निन्दा करते हुए स्पष्ट कहा था—

"उस व्यक्ति को खाने का कोई अधिकार नहीं है जो स्वयं कोई उत्पादक श्रम नहीं करता है।"

यही कारण था कि उन्होंने बुनियादी शिक्षा में उद्योग एवं स्वावलंबन पर अत्यधिक ज़ोर दिया।

भारतवर्ष में महावीर, बुद्ध, कबीर एवं महात्मा गांधी जैसे समाजवादी आदर्श पुरुषों के उपदेशों का जनता पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। इसके विपरीत विडम्बना यह रही कि उपर्युक्त आदर्श पुरुष अपने जीवन में गरीबों, दलितों एवं अछूतों के रहे परन्तु मरणोपरान्त धनिकों ने उनको अपना बनाकर उनकी अस्थियों, दाँतों अथवा भस्मी पर बड़े-बड़े मंदिर, स्तूप, समाधियाँ एवं स्मारक निर्माण कर मानो उनके आदर्श सिद्धान्तों को गहरा गाड़ दिया।

वर्तमान समय में इस सड़क की आर्त्त पुकार को सुना है श्रीमती इंदिरा गांधी ने। वस्तुतः एक नारी ही दूसरी नारी की पीड़ा को समझ सकती है। श्रीमती गांधी भारत से गरीबी हटाने को और शोषण की इस प्रक्रिया को बन्द करने को कृत संकल्प हैं। इस दिशा में निम्नलिखित ठोस कदम भी उठाए जा चुके हैं—

१. बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया जा चुका है ताकि धनिकों का बैंकों से वर्चस्व समाप्त हो और सर्वहारा वर्ग के लोग भी बैंकों से लाभ उठा सकें।

२. राजाओं और महाराजाओं को मिलनेवाली पेंशन या प्रिवी-पर्स

समाप्त कर दी गई हैं जिससे यह करोड़ों रुपये की राशि जन-साधारण के हितार्थ खर्च की जा सके।

३. मृत्यु-कर लगाकर बड़े-बड़े पूंजीपतियों द्वारा शोषित धन को पुनः समाज के हित में लगाया जा सके।

४. शहरी-सम्पत्ति का निर्धारण किया जा रहा है ताकि धनिकों की लोभ की सीमा स्थिर की जा सके और उनमें संतोष-वृत्ति पैदा की जा सके।

५. देहातों में जोत की सीमा निश्चित की जा चुकी है। इस प्रकार बड़े-बड़े जमींदारों और जागीरदारों से जो भूमि प्राप्त होगी वह भूमिहीनों में वितरित कर दी जाएगी।

इस प्रकार पंचसूत्री योजनाओं द्वारा 'गरीबी हटाओ' कार्यक्रम को कार्यान्वित किया जा रहा है और शोषण की प्रक्रिया की सीमा को बहुत कम किया जा रहा है। यही नहीं, वर्तमान समय में अनाजों की अत्यधिक मूल्य-वृद्धि के कारण सरकार अनाज के थोक व्यापार को भी अपने हाथ में लेने की योजना पर काम कर रही है। इन सब योजनाओं में सरकार को अच्छी सफलता प्राप्त हो और समाज में हजारों वर्षों से चली आ रही शोषण की प्रक्रिया समाप्त हो, यही हार्दिक इच्छा है।

अंत में 'सड़क की आर्त पुकार' को देश के धनिकों को भी सुनाना है ताकि वे भी सड़क की भांति शोषण से विचलित होकर स्वयं प्रायश्चित करें और शोषण की प्रक्रिया को सीमित कर दें। अन्यथा सर्वहारा वर्ग की क्रांति की आंधी में, जिसे श्रीमती इंदिरा गांधी लाने का पूर्ण प्रयास कर रही हैं, वे कहीं के नहीं रहेंगे। 'सड़क की आर्त पुकार' की यही सामयिक चेतावनी है जिसे देश के धनिक वर्ग सुनेंगे और संतोष को जीवन में अपनायेंगे क्योंकि महाकवि तुलसी ने संतोष को ही सबसे बड़ा धन माना है—

गो धन, गज धन, बाजि धन, और रतन धन खान।
जब आवे संतोष धन, सब धन धूलि समान॥

गढ़वाली लोकगीतों में सैन्य-भावना

□

राधाकृष्ण शास्त्री

रविवार, २८ जून, सन् १६४२ को जब हम गंगोत्तरी से श्री केदारनाथ के दर्शन करने जा रहे थे तो मत्तू चट्टी से करीब डेढ मील गोपाल चट्टी के पास हरे-भरे खेतों में इधर अपने काम में तपस्वियों की-सी धुन लिए निश्चल भाव से पुरुष मग्न थे, उधर स्त्रियां हाथ से काम करती जाती थीं तथा स्वरीले कंठों से राष्ट्र-सेवा-सैन्य-भावना गढ़वाली लोक-गीत गा रही थी।

ओजस्वी कर्ण-प्रिय गीत सुनने हम ठहर गये। भांति-भांति के विचार आये, वे वर्णनातीत हैं। सच है, जिनमे जीवन हो, जीवन का उत्साह और ताजगी से भरी भरपूर राष्ट्र-भावना हो, वे ही नि.स्पृह राष्ट्र-सेवी हो सकते हैं। क्यों न हो, नगराज हिमालय, भारत का भव्य ऊँचा मस्तक, पुण्य-सलिला यमुना-गंगा का उद्गम-स्थल, श्री केदारनाथ-बद्रीनाथ का परमधाम—इसी में स्थित धर्म-प्राण भारत का सौष्ठव बढानेवाला प्यारा गढ़वाल प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ ही सांस्कृतिक और ऐतिहासिक विशिष्टताएँ रखनेवाला यह उत्तराखंड अपने लोक-गीतों में भी अपनी गौरव-गरिमा को बढाये हुए है। एक ओर पर्वतीय जन-जीवन जितना संघर्षमय और कष्टदायक है, दूसरी ओर उतना ही देश-प्रेम और यथार्थ राष्ट्रीय भावना का पुंज-रूप है।

इतिहास कहता है कि गढवाली सैनिक ने समय-समय पर संसार के सम्मुख अपने शौर्य और सामर्थ्य के अपूर्व दृष्टांत रखे है। गढवाल प्रदेश का प्रत्येक व्यक्ति अपने को राष्ट्र का कर्तव्यनिष्ठ सैनिक समझता है। हरी-भरी पर्वत वना-वलियाँ, गहरी सर्पाकार घाटियाँ हर समय राष्ट्र-भक्ति, भावनापूर्ण लोक-गीतों से गुंजित रहती है। एक ओर पर्वतीय वन-चरियाँ बांज, कथीड और बुरूंस की घनी छायाओ मे स्वस्थ-चित्त काम करती हुई गुनगुनाती रहती हैं तो दूसरी ओर उनका सैनिक पति बर्फीले उत्तुंग शृंगो पर राष्ट्र के प्रति सीमा पर सजग प्रहरी रहता है।

यहां मैं गढ़वाली औरतों से सुने सैन्य भावना भरे गीत उद्धृत करता हूँ—

निशांदा मार जू रण मां,
निजांदो वार त्वौवो खाली।
इना छन शूर रण बांका,
बहादुर वीर गढ़वाली॥

लड़ाई के मैदान में गया हुआ गढ़वाली सैनिक दुश्मन को पीठ नहीं दिखाता क्योंकि उसका एक भी वार खाली नहीं जाता। गढ़वाली वीर! इतने रणबांकुरे होते हैं कि जिनका एक भी निशाना कभी नहीं चूकता।

उक्त उत्तेजित गीत को सुन मैं आश्चर्यचकित हो गया। तब हमारे गढ़वाली कुली ने कहा "बाबूजी! सुनो। यहाँ की स्त्रियां ही नहीं, राष्ट्रीय आपत्ति के समय तो यहाँ का सैनिक अपने परिवार, यहाँ तक कि अपने को भी भूल जाता है। उस समय राष्ट्र-रक्षा को ही वह अपना जीवन मानता है, केवल इसी को अपना कर्तव्य और धर्म समझता है। जैसे कि एक सैनिक पति अपनी स्त्री से कहता है—

धर्म मेरी आज ई चा
कि छों देश को सिपाही, मेरी मोहनी।

प्रिय मोहनी! आज मेरा सबसे बडा धर्म और कर्म यही है कि मैं लड़ाई के मैदान में जाऊँ, क्योंकि मैं राष्ट्र का सिपाही हूँ।"

मेरे सहगामी पं० उमाशंकर जी ने कहा कि गढ़वाली लोकगीतों में सैनिक को लेकर पर्याप्त सामग्री मिलती है। अत: मैंने श्री केदारनाथ-यात्रा में जो गीत संग्रह किये उन्हें प्रस्तुत करता हूँ।

आपत्तिकाल में गढवाली आपसी भेद-भाव को भुलाकर सर्वप्रथम राष्ट्र की रक्षा को प्राथमिकता देते है। जैसे—

हम तैं राष्ट्र पैली चा,
हमारी जान पैथर छन।
जबरि भी श्रौंद क्वी संकट,
तरुण बलिदान एथर छन।

—हमे राष्ट्र प्राणों से प्यारा है, हमारी जवानियां राष्ट्र के पीछे हैं। देश पर जब कोई भी संकट आता है तो राष्ट्र-रक्षा के लिए गढ़वाली युवक आगे आकर बलिदान के लिए होड़ लगाते है।

परीक्षा वह काल है जिसमें बड़े-बड़े धीर, वीर, धुरंधर घबरा जाते हैं—

स्वर्णकार ने स्वर्ण को दियो अग्नि में डार,
कांप उठ्यो पानी भयो, देख परीक्षा काल।

शूरवीर, रणधीर सैनिकों के सामने भी ऐसी परीक्षा की घड़ियाँ आ जाया करती हैं; किन्तु ऐसी परीक्षा में आत्मविश्वासी राष्ट्रसेवी सैनिकों के लिए उत्तीर्ण होना कठिन काम नहीं। जंगी जोश के मारे वे सदा फूले रहते हैं। राष्ट्र की रक्षा के लिए वे पुर्जे-पुर्जे कटना अपना अहोभाग्य समझते हैं।

ऐसी ही परीक्षा एक नव-विवाहित गढ़वाली सैनिक को हुई, जिसमें वह विजयी हुआ। वह अपनी नवोढ़ा (मोहनी) के साथ आनन्द मना रहा था कि यकायक शत्रु ने धावा बोल दिया। एक कर्तव्यनिष्ठ सैनिक को खबर मिलते ही मोर्चे पर जाना पड़ता है इसलिए वह गर्वीले शब्दों में अपनी नवोढ़ा पत्नी से कहता है—'प्यारी ! तुम्हें अब घर जाना पड़ेगा। मुझे दुश्मनों के छक्के छुड़ाने हेतु सीमा की रक्षा करने जाना है।'

इतना कहते ही दोनों में हृदयस्पर्शी वार्तालाप शुरू हो जाता है। मोहनी कहती है—

> ह्वी मैना निह्वाय पतो जी
> मेरि नाक मा नथूली—मेरा सिपै जी।
> कन कै को रौंलु पत्नी जो
> मि घार मा यकूली—मेरा सिपै जी॥

—मेरे सिपाही जी ! मुझे शादी किये हुए दो महीने भी पूरे नहीं हुए। न जाने क्या होगा, फिर मैं अकेली कैसे रहूँगी ?

विजयसिंह कहता है—'प्रिया ! रोने-पीटने का वक्त नहीं है। मैं राष्ट्र का कर्तव्यनिष्ठ सैनिक हूँ। मुझे राष्ट्र-रक्षार्थ शीघ्र ही जाना है। आज राष्ट्र को मेरे-जैसे अनेक सैनिकों की जरूरत है। भारतमाता के प्राचीन गौरव की रक्षा के लिए गढ़वाल प्रदेश की माताओं ने अपने पुत्र, पत्नियों ने सुहाग, बहनों ने भाई और बच्चों ने (एकमात्र सहारा) बाप को सहर्ष भेंट किया है। इस वीर भूमि की ऐसी प्रभावशाली उत्कृष्टता वर्षों से चली आ रही है। प्रिया ! तुम्हें भी इस गौरवशाली काम के लिए एक बेजोड़ मिसाल बनना है वरना शूरवीर-रणधीर भावना को नाउम्मेदी हो प्रदेश के कलंक लग जायगा।'

> वक्त नी च रोणा को
> खिलै दे मुखड़ी को रंगा—मेरी मोहनी।
> हँसि खेली जाणि दे मी
> नियर वीरता च भंगा—मेरी मोहनी।

—प्रिय मोहनी ! अब रोने-पीटने का वक्त नहीं है। देश पर संकट के बादल छाये हुए हैं, तुम्हें इस वक्त अपने मुरझाये हुए चेहरे पर केवल रंग भर मुसकाने की जरूरत है, वरना तो सैनिकों की वीरता और स्त्रियों की त्याग-भावना पर धब्बा लगने का डर है।

इतना सुनते ही तो मानो प्रगाढ़ निद्रा में सुप्त सिंहनी को शब्दों की छिटपुट आवाज ने जगा दिया हो, वह यकायक माया, ममता और प्रेम की कच्ची डोर को तोड़कर अपने कर्तव्य और देश-भक्ति की अटूट शिला बन, अपने धर्म को समझ गई कि गढ़ प्रदेश की स्त्रियाँ हमेशा ही ऐसा त्याग करती आयी है। उसके (मोहनी ने) *यकायक अपने मुखमंडल पर विजयोल्लास की उमंग लिये* हँसती-हँसती अपनी अँगुली से रक्त की बूंद निकाल उत्साह बढ़ाने हेतु यह कहते हुए झट विजय-तिलक लगा दिया—

जावा मेरा वीर सिपाही
लगी खून की पिठाई—मेरा सिपै जी।
मेरो आज धर्म ई चा
छवा देश का सिपाही—मेरा सिपै जी॥

—मेरे रणधीर पति ! मैं आपको विजय-तिलक लगाती हूँ। मोह और मायाजाल से निकलकर मुझे अपना धर्म साफ दिखाई देता है अतः मैं अपने प्राण-प्रिय धन को मातृभूमि के चरणों मे अर्पण करती हूँ।

उसे भान हो आया कि उसकी प्रतिष्ठा की लालिमा उस वक्त और भी अधिक चमकेगी जब उसका पति विजयश्री लेकर वापस लौटेगा। साथ ही यह भी खयाल आया, ऐसा न हो जाय कि उसका प्यारा धन शत्रु से भिड़ते वक्त, सहज सुलभ सांसारिक सुखों की बुरी वासना को मन में धर, मोह-ममता के कारण विचलित हो जाय, इसलिए पुन: सजग होकर कहने लगी—

चिन्ता न करै की मन भंग लावा
धीरज धरी लड़े म जावा।
करतब अपणों जै की दिखावा
गबरु सुमन सी नाम कमावा।
हे मातृभूमि ! तू सिरताज
भेंट च त्वे कू सुहाग आज॥

—भारत माँ ! आपके पवित्र चरणों में मैं अपना सर्वस्व अर्पण करती हूँ। मेरे प्रिय ! मन मे किसी तरह का फिक्र मत करना, रण मे धैर्य और वीरता से लड़ शत्रु के दाँत खट्टे करना, कहीं विचलित न हो जाना।

यदि सकुशल विजयश्री प्राप्त कर लौटने का सौभाग्य मिले तो अमर वीर दरवानसिंह और अमर शहीद श्री सुमन की भाँति नाम कमाकर आना। (गढ़वाली वीर दरवानसिंह ने विश्वयुद्ध में मरणोपरान्त विक्टोरिया क्रॉस पाया था)

जर्मन-युद्ध में काम आये गढ़वाली वीरों के स्तम्भ हमने यमुनोत्तरी-

यात्रा में जाते समय चौपरी चट्टो के पास देख, दो मिनट मौन श्रद्धांजलि अर्पित की थी।

जन्मभूमि पर आये संकट के समय गढ़देशीय सैनिक ने केवल मर-मिटना सीखा, देश के हित मरना वह अपना कर्तव्य एवं गौरव मानता है। पर्वतीय लोक-जीवन की थाती, इस कर्मभूमि को ऊँचा करनेवाले सैन्य-भावना के ये लोक-गीत देश-भक्ति के प्रेरणा-स्रोत हैं। पवित्र मंदाकिनी और कालिन्दी के समान ये भावधाराएँ गढ़ प्रदेश की प्रत्येक घाटी में बहती हैं। प्राणों को देशार्पण करने की स्पृहा पुलक-पुलक में समाई रहती है।

तेरी गोदी कु त्वे थैं मां
कन कै मोल भी द्यूंलो ।
करो का देश की सेवा
मि अपनी जान दे द्यूंलो ॥

—मां! तेरी सुखदायी गोद में जन्म लेने का कर्ज मैं कैसे चुका सकूंगा! मुझे तो केवल एक ही रास्ता दिखाई देता है कि तुम्हारी सेवा ही दिन-रैन तन-मन-धन से करूँ। अम्बे! जब तेरे लिए बलिदान करने का वक्त आयेगा तो मैं कदापि पीछे नही रहूँगा।

विजयसिंह अपनी हँसमुखी मोहनी से तिलक लगवा, विदा हो, नगराज हिमालय के बर्फीले उत्तुंग शृंगों पर जा, हमलावरों को खदेड़, पारितोषिक पा, हवलदार बन अपनी प्रिया को पत्र लिखता है—

मेरा लाटा काला खिलाई पिलाई,
संबधे कि मैं लो लिखाई पढ़ाई।
मेरा प्यारो बेटा होलूं जवान,
भरती करै दे देश क बान ॥'

—प्रिय मोहनी! मेरे बेटों को पढ़ा-लिखाकर जवान बनाना और भारत मां की सेवार्थ सेना में भर्ती करवा देना।

उक्त पत्र को पढ़ नवला मोहनी हर्ष-मग्न हो गई तथा चारों ओर से एक उदात्त गंभीर स्वर गूंज उठा—"धन्य सैनिक!"

पर्वतों की सन्तानें अपने गांवो, धारों, पर्वतों, घाटियों, झरनों तथा पशु-पक्षियों के संग अपना गौरवमयी जीवन निर्वाह करते हैं। दूसरी ओर कठिन संघर्षमय पार्वत्य जीवन निहारते-निहारते भी वे अपनी स्वाभाविक मधुरता और प्राकृतिक तादात्म्य को नहीं खो बैठे।

प्रकृति और राष्ट्र की स्थिति के सभी पक्ष गढ़वाली लोकगीतों में सहज में ही मिल जाते हैं। सौन्दर्यमयी धरती पर मानव के थिरकते चरण 'गराउं'

सैनिक नृत्य की भी सृष्टि करते हैं। राष्ट्र-सेवा एवं सैन्य-भावना का आधिक्य ही गढ़वाली लोकगीतो की प्रधानता है।

यद्यपि राजस्थान के रणबाकुरों एवं वीरागनाओ ने समय-समय पर अपनी वीरता प्रदर्शित कर शत्रुओं के दांत खट्टे किये है तथापि लोकगीत तो सैन्य-भावना से शून्य ही दिखाई देते है।

अतः मरुभूमि के लेखको से सादर नम्र निवेदन है कि उक्त गीतो की भांति राजस्थानी गीतों में सैन्य-भावना का पुट हो तो यहां के बच्चे-बच्चे और चप्पे-चप्पे में एक नव जागृति, नवचेतना की नव्य लहर का सचार हो; राजस्थान का चतुर्दिक उत्थान और विकास हो जाय तथा इसकी ख्याति और भी अधिक बढ़ जाय—ऐसी मेरी धारणा है।

भारत राष्ट्र की भाषाओं में भावात्मक एकता के स्वर

श्रीनन्दन चतुर्वेदी

भारत राष्ट्र की समस्त भाषाएँ वे प्रवहमान दुर्धर पयस्विनियाँ है जिनकी जल-वीथियों मे एकता के स्वर गूंज रहे हैं। भावात्मक एकता की पावन ध्वनि ने विविध भाषाओं का शक्तिमान माध्यम लेकर केसर की क्यारियों से कन्याकुमारी तक तथा अटक से कटक तक इस देश के भूगोल से जन-भावना को सुदृढ सूत्र में बाँध दिया है।

भावात्मक एकता के स्वरों की परम्परा ठेठ वैदिक संस्कृत से चली है। पृथिवीसूक्त (अथर्व वेद—१२वां कांड) मे ऋषि धरती माता पर सब-कुछ बलि देने के शुभ उद्यम मे लगने की पावन कामना करता है। ऋग्वेद के ऋषि का कथन है—

संगच्छध्वं संवदध्वं सवो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथापूर्वे सं जानानां उपासते ।।
समानी वा आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सु सहासति ।।

—ऋग्वेद १०।१६१।२

अर्थात्—हे मनुष्यो ! परस्पर मिलकर रहो, परस्पर संवाद करो। तुम्हारे मन एक-दूसरे से मिले हो, यही तुम्हारा कर्तव्य है। पूज्य देवगण भी परस्पर मिलकर संसार को चलाने में अपना कर्तव्य सम्पादित कर रहे हैं। तुम एक साथ चलो, एक-सा बोलो, तुम्हारे हृदय समान हों, तुम्हारे मन समान हों।

इसी प्रकार यजुर्वेद ३६/१८ मे कहा गया है कि सब लोग मुझको मित्र-दृष्टि से देखें। सबको मैं मित्र-दृष्टि से देखूं। उपनिषदों में अनेकानेक स्थानों पर 'सर्व भूतांतरात्मा' की चर्चा मिलती है।

वैदिक ऋषि ने बडी उदारतापूर्वक धराधाम के सम्पूर्ण जीवों में समन्वय-स्थापना का उद्यम किया था। भारत मात्र ही नहीं, विश्व की भावात्मक एकता

में वैदिक ऋषियों का योग अविस्मरणीय है।

वैदिक संस्कृत के पीछे यही कार्य लौकिक संस्कृत द्वारा संपन्न हुआ जिसमें धार्मिक ग्रंथों के माध्यम से घर-घर अलख जगाया गया।

महर्षि वाल्मीकि की उक्ति 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' अर्थात् जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी श्रेष्ठ है, तथा विष्णुपुराण के रचयिता की उक्ति—

गायन्ति देवा. किलगीतिकानि,
धन्यास्तु ते भारत भूमि भागे।
स्वर्गापवर्गास्पद मार्ग भूते,
भवन्ति भूमः पुरुषा सुरत्वात ॥

—विष्णुपुराण २/३/२४

अर्थात्—देवगण निरंतर यही कामना करते हैं कि जिन्होंने स्वर्ग और मुक्ति-सुख के साधनभूत भारतवर्ष में जन्म लिया है, वे भारतीय हम देवताओं की अपेक्षा भी अधिक धन्य हैं। राष्ट्रीय भावात्मक एकता की दृष्टि से भाषा का कितना सुदृढ़ आधार प्रदान करती है।

वायुपुराण का रचयिता जब कहता है कि—

उत्तरं यत्समुद्रस्य, हिमाद्रेश्चैव दक्षिणाम
वर्षं तद् भारत नाम भारती यत्र सन्तति

तब वह भाषा के माध्यम से कितने बड़े भू-भाग के लोगों की एकता का आधार दे देता है!

गंगा च यमुना चैव गोदावरि सरस्वती,
नर्मदा सिन्धु कावेरी जलेऽस्मिन् संनिधं कुरु।

तथा—

अयोध्या माया मथुरा, काशी काञ्ची अवन्तिका,
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्ष दायिका।"

के उद्‌घोषक दूरदृष्टा पौराणिकों एवं संस्कृत भाषा के उत्तरवर्ती साहित्यकारों ने मूर्त भूगोल से अमूर्त भावना का समन्वय कर जहाँ जन-जन के बीच की खाई पाटी वहीं उस अभंग राष्ट्रीयता को सुदृढ स्वरूप दिया जो भूमि, जन और संस्कृति त्रि-आयामी आधार लिये खड़ी थी।

संस्कृत के बाद पालि, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं के माध्यम से देश की भावात्मक एकता पुष्ट हुई। बौद्धों की जातककथा में जैनियों की उपदेशपरक कथाएँ तथा दूसरा सर्व साधारण के मन को छूनेवाला साहित्य देश के जन-जन को सन्निकट लाता रहा। यह साहित्य किसी जाति या वर्ग विशेष का न रहकर सम्पूर्ण मनुष्य-समाज की निधि बन गया।

खड़ी बोली हिन्दी के विकास से बहुत पूर्व ही पूरब से पश्चिम तक समूचे भारत की अपभ्रंश भाषाओं ने बड़े-बड़े कुंज खड़े कर लिए थे जिनकी छाँह में देश का जन-जीवन क्लांति मिटाता रहा।

उत्तर से दक्षिण और पूरब से पश्चिम तक अपने पैरों से देश की धरती नापनेवाले मनमौजी संतों की 'सधुक्कड़ी' भाषा भी भावात्मक एकता में कम योगदायी नहीं रही। इन संतों ने जिस तरह छोटे-बड़े आदमी को अपनाकर वर्ग-हीन समाज की स्थापना की, उसी तरह देश की हर भाषा की शब्दावली को भी अपनाकर सर्वसुलभ भाषा की सृष्टि की। संतों की भाषा बहता गंगाजल थी, जिसमें जो भी नहाया, अपने भेद-भाव का मल नसा गया; भावात्मक एकता के रंग में रम गया। संत ज्ञानेश्वर ने 'सर्वांघटी राम देहा देही एक' कहकर इसी एकता का प्रतिपादन किया है। गोरख ने, सिद्धों ने तथा सरहपाद ने भी भाषा के माध्यम से व्यक्ति-व्यक्ति के बीच अभेद को दिखाया था। कबीर जी के शब्दों में भावना की कितनी एकता जुड़ी है—

हिन्दू से राम, अल्लाह तुरुक से बहु विधि करत बखाना,
दुहूं को संगम एक जहाँ सहवाँ मेरा मन माना।

गुरु नानक जी भी ऐसी ही बात कहते हैं—

ना हम हिन्दू ना मुसलमान,
दौनो बिच्च वसें शैतान,
एकं एको एक सुभान।

महान संत धना कहते हैं—

राम कहो, रहमान कहो,
कोई कान्ह कहो महादेव री
पारसनाथ कहो ब्रह्मा,
सकल ब्रह्म स्वयंसेवरी।

यहाँ तो वैष्णव, शैव, जैन, अद्वैती और मुसलमान—सभी के बीच अभेद स्थापित किया गया है।

इसी प्रकार की बात गरीबदास, दरिया साहब, तुकाराम, रैदास, धरणी आदि संतों ने भी कही है। समर्थ गुरु रामदास ने भी अपनी भाषा से भावात्मक एकता के सेतुबंध को पुष्ट किया है।

सधुक्कड़ी के बाद भावात्मक एकता की यह बोली उत्तर भारत में पहाड़ी, डोगरी, पंजाबी, लहँदा, सिन्धी, पश्चिमी और पूर्वी हिन्दी (अर्थात् खड़ी बोली, बाँगरू, ब्रज, अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी, मगही, मैथिली, भोजपुरी, उड़िया), असमी, बंगला, गुजराती, उर्दू तथा दक्षिण में मराठी, कन्नड़, मलयालम,

तमिल, तेलुगु आदि राष्ट्रीय भाषाओं के सरिता-जल से सिंचित होकर पल्लवित, पुष्पित एवं फलित हुई।

तुलसीदास का 'रामचरितमानस' इस दिशा में सुनियोजित ढंग से सम्पादित अवधी भाषा का बहुत बड़ा अभियान था। सूर, मीरां व नरोत्तमदास आदि भक्तों की भावधारा केवल उनकी नहीं, भारत के जन-जन की निधियां थी।

'सुरसरि सम सब कहँ हित होई' की उक्ति जन-कल्याण और समष्टिगत सुख की कितनी विशद भावना से ओत-प्रोत थी।

भावात्मक एकता की पुण्यतोया वीथियाँ विविध भाषाओं की सहज-गति-सरिताओं में अविरल वेग से सतत बहती हुई आज के युग तक जन-मानस को नहलाती रही और इस पुण्यकार्य मे उत्तर व दक्षिण की समस्त भाषाओं, विभाषाओं व बोलियों का योग रहा।

भारत राष्ट्र की भावात्मक एकता को तमिल-भाषी सुब्रह्मण्य भारती कितना योग दे रहे थे, जब वे कह रहे थे—

"हमारी भारत माता कोटि-कोटि मुखवाली है किन्तु उसमे निहित प्राण तो एक ही है। यद्यपि यह अठारह भाषाएँ बोलती हैं तथापि उसकी मूल धारा तो एक ही है।"

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा है—

हे मोर चित्त, पुण्यतीर्थे जागो रे धीरे,
एई भारतेर महा मानवेर सागर तीरे।
केह नाहि जाने, कार आह्वाने कत मानुषेर धारा,
दुर्वार स्रोते एलो, को था हते, समुद्रे हलो हारा।
हे थाय आर्य, हेथा अनार्य, हे थाय द्रविड़, चीन,
शक-हूण दल-पाठान-मोगल एक देहे हलोलीन।
रण धारा बाहि, जय गान गाहि, उन्माद कलरवे,
भेदि मरु-पथ, गिरि पर्वत मारा एसे छिले सबे।
तारा मोर माझे सबाई बिराजे केहो नहे नहे दूर,
आमार शोणिते रमेछे ध्वनित तारि विचित्र सुर।

अर्थात्—हे मेरे हृदय! इस महा मानवता के उदधितीर भारत देश में धैर्यपूर्वक श्रद्धा के साथ जागरण कर। कोई नहीं जानता किसके आह्वान पर मनुष्यता की कितनी धाराएँ दुर्धर वेग से प्रवाहित होती हुई यहाँ आयीं और इस विशाल सागर में समाहित हो गईं। आर्य, अनार्य, द्रविड़, चीनी, शक, हूण, पठान, मुग़ल आदि सभी इस धरती पर एक साथ मिल गए हैं। रण की धाराएँ बहाते, उन्माद के कलरव में जयगान गाते हुए, मरुपथ को पार करते और पर्वतों को लाँघते हुए जो लोग उत्साहपूर्वक इस देश में आए थे, उनका अब कहीं कोई

पृथक् अस्तित्व नहीं रहा। वे सब-के-सब मेरे अंतर में विराजते हैं। कोई दूर नहीं है। मेरे शोणित में रमा हुआ उन सबका स्वर ध्वनित हो रहा है।

मलयालम के कवि श्री उल्लूर एस० परमेश्वर अय्यर कहते हैं—

इम्मर इतोप्पिले तंर्मणिक्का टिंटे,
मर्मर वाक्यत्तिन्नर्थं मेन्तो ?
एन्नयल्कार निलनिन्नुमान,
भिन्न नेन्लेन्वंडु निन्नितु वन्नुरप्पू।

अर्थात्—विपिन के बीच मारुत के शब्दों का क्या अर्थ है ! पवन आता हुआ यही कहता है कि मैं और मेरा पड़ोसी भिन्न नहीं है।

मलयालम के ही दूसरे कवि श्री वल्लत्तोल कहते हैं—

कैकपुकित्तुइयूक्कुकी कोडि येड्डु कान्,
नम्मळ् नट्टा नूल कोन्डुम नम्मल नेमृता-वस्त्रम्,
कोंडुम्

जिसका आशय है कि भारतमाता की पावन कोख से जन्मे सभी भारतीय भाई-भाई हैं। अपने शक्तिमान हाथों में इस पवित्र ध्वज को थामे-थामे, आओ ! हम सब आगे बढ़ते जाएँ।

पंजाबी के कवि गौहर का कथन है—

मिले दिलानुं काहनुं विछोड़ नाईं,
जेकर बिछड़्यां नइमो मिलाणा जोगा।

अर्थात्—यदि तुझ में बिछुड़े दिलों को मिलाने की सामर्थ्य नहीं है तो मिले हुए दिलों को क्यों फोड़ रहा है ?

इसी प्रकार की एकतामूलक उक्तियाँ डोगरी भाषा के कवियों-लेखकों में मिलती है, ऐसी ही उड़िया के कवियों में तथा इसी भाव की प्रेरक उक्तियाँ भारत की अन्य समस्त भाषाओं में देखी जा सकती है।

'वंदेमातरम' का प्रातःस्मरणीय भावपूर्ण उद्बोधक-मंत्र, 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' का कल-कंठ-स्वर, 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा' का प्रेरणास्पद नारा, 'सुरलोक से भी अनुपम ऋषियों ने जिसको गाया', 'वह मातृभूमि मेरी वह पितृभूमि मेरी' की उद्बोधक वाणी और 'तन समर्पित, मन समर्पित और यह जीवन समर्पित, चाहता हूँ—देश की धरती, तुझे कुछ और भी दूँ' (रामावतार त्यागी) का समर्पण-भाव भावात्मक एकता को राष्ट्रीय भाषाओं का उपहार है।

विभिन्न भाषाओं की स्रोतस्विनियों में भावात्मक एकता की ये पावन वीथियाँ सतत सर्जित होती रहीं, होती ही रहेंगी अनन्तकाल तक जब तक यह सनातन देश—भारत राष्ट्र जीता है।

देख कबीरा रोया

गुलाबचन्द रांका

शिक्षा का स्तर गिर रहा है। स्कूलो मे अनुशासन नही रहा। शिक्षा-नीति में आमूलचूल परिवर्तन अपेक्षित है। अमुक विद्यालय का प्रतिशत परीक्षा परिणाम नितान्त सोचनीय रहा। अध्यापक पढाते-लिखाते नही। आजकल के काहे के शिक्षक और काहे के स्कूल ? सब कबूतरखाने हैं। ऐसे अनेक शब्दबाण आए-दिन दल-नेताओ, अधिकारी वर्ग, यहाँ तक कि कभी-कभी शिक्षा-जगत से अन-भिज्ञ, साधारण बैठे-ठाले ग्रामीणों द्वारा भी छोड़े जाते रहे है। और इन सभी शब्द-बाणो की चिड़िया की आँख होता है समाज का साधारण किन्तु शिक्षा-जगत का असाधारण शिक्षक, मास्टर, अध्यापक।

प्रजातंत्र मे गुणो की अपेक्षा अवगुणों पर दृष्टि ठीक जमती दिखाई देती है। अधिकार अखरते हैं। कर्तव्यों के काले कानून नागफांस-से फैलते चले जाते हैं। बेचारा शिक्षक-वर्ग इसमें जकडता चला जाता है, चला जा रहा है, और न जाने कब तक जकड़ता चला जायेगा ? द्रौपदी के इस चीर की न सीमा दीखती है, न अन्त।

शिक्षक का काम है शिक्षा-प्रसारण, पढ़ाना-लिखाना, समाज की नवपीढ़ी को शिक्षित एवं सुसंस्कृत करना। बस, यही क्या कम काम है ? क्या कम जिम्मेवारी है ? किन्तु यह किसे पता है कि जो भार शिक्षक को सौंपा जाना चाहिए, वस्तुत. उसे सौंपता ही कौन है ? शिक्षा-नीति निर्धारित करे कोई मंत्री, संचालन करे कोई डायरेक्टर, पुस्तकें लिखें वे जो उन कक्षाओं मे पढ़ाना तो दूर—एक क्षण कभी किसी कक्षा में खडे तक नही रहे। पर शिक्षण-कार्य करे शिक्षक। कैसा शिक्षक ? जो जीवन-भर पढ़ाता रहा, किन्तु उसके अपने विषय मे उसकी अपनी कक्षाओं के पाठ्यक्रम-निर्माण में उसका कोई हाथ नहीं, उसकी कोई पूछ नही। क्यों ? शिक्षक जो है। सरकारी नौकर है। विभागीय पंचाग (कैलेण्डर) की घड़ी पर सुई की तरह जुलाई से मई मास तक घुमाया जाता है।

जून मास शिक्षक का शारीरिक रूप से अवकाश-काल घोषित है, किन्तु

मानसिक रूप से इन दिनों वह स्थानान्तर रोग से ग्रसित हो जाता है। भापणों-व्याख्यानों में बहुधा सुनते है कि स्थानान्तर आदि कार्य जून तक हो ही जाने चाहिए। किन्तु इस चाहिए का चीर बढता ही जाता है। जुलाई, अगस्त, सितम्बर—न जाने किस माह तक आदेशों की इन्तजार करनी पड़ेगी! कब तक ग्रेड-प्रमोशन होगा ? कोई सर्वमान्य नियम नही है। स्थानान्तर चाहा ही नहीं था, हो गया। कैसे कैंसिल कराऊँ ? जान-पहचान है नही, कहीं पहुँच भी नहीं। मन मार बैठा। ऐसा शिक्षक क्या खाक पढ़ायेगा ?

स्कूल खुल गए। पुस्तकें बदल गईं। पुस्तकें छप रही हैं। बाज़ार मे नहीं आयी। शिक्षक क्या करे ? तब तक सामान्य ज्ञान-चर्चा करें। मौखिक ज्ञान दें। कोर्स लम्बा, पुस्तकें उपलब्ध नही, परीक्षा समीप, परिणाम स्वतः स्पष्ट ! किन्तु दोषी शिक्षक ! "स्वतन्त्रता-प्राप्ति से पूर्व शिक्षक जो शिक्षक था, आज नहीं रहा।" कुछ लोग कहते सुने जाते है। ठीक ही तो कहते है।

पहले आम चुनाव नही होते थे, पंचायत-चुनाव नहीं होते थे। अध्यापक अपना मुख्य काम पढाना छोड़कर चुनाव के चक्कर में स्कूलें बद नही रखते थे। किन्तु आज बेचारे शिक्षक की भली बनी है। जनगणना मे शिक्षक, पशु-गणना मे शिक्षक, उप-चुनाव मे शिक्षक, प्रौढ़-शिक्षा-प्रसारण मे शिक्षक, वृक्षारोपण में शिक्षक, उद्योग पर्व-सचालन मे शिक्षक, छात्रवृद्धि-अभियान तथा 'स्कूल चलो आन्दोलन' मे शिक्षक—सर्वत्र शिक्षक-ही-शिक्षक! फिर भी शिक्षण-कार्य तो है ही।

किसी प्रकार इनसे निवृत्त हुए तो फिर शाला टूर्नामेंट, वार्षिकोत्सव की तैयारी, जयतियाँ, सास्कृतिक एवं राष्ट्रीय त्योहारों को मनाने की शृंखला शिक्षक को जकड़े रहती है। बीच-बीच मे सेमिनॉर, कार्यशाला, अभिनवन-प्रशिक्षण आदि की कड़ियाँ शिक्षक-कार्य-भार-शृंखला की लम्बाई मे श्रीवृद्धि करती चली जाती हैं।

लोग फिर भी कहते है—अध्यापकों के पास सिवाय पढाने के काम ही क्या है ? अरे, केवल पढ़ाने के लिए उसे छोड़ता ही कौन है ? आए-दिन रेड-क्रॉस की झण्डियाँ, शिक्षक-दिवस की झण्डियाँ बेचना भी तो उसी को है। कहीं स्काउट भवन बन रहा है, चन्दा एकत्रित करे शिक्षक ! जिले के अस्पताल का विकास हो रहा है, स्कूल-भवन बन रहा है, चन्दा बटोरे शिक्षक !

इस प्रकार आज का शिक्षक एक शिक्षक ही नहीं, वह एक किसान भी है, जो स्थानान्तर, तरक्की के राजकीय आदेशों के लुभावने बादलों की इन्तजार में सदैव आसमान की ओर टकटकी लगाए रहता है। वह एक मजदूर है जो घर-घर घूमकर गणना-कार्य किया करता है। वह एक माली है जो वृक्षारोपण करता है। वह एक नट है जो विद्यालय-मंच पर सदैव उपस्थित रहता है। वह एक व्यापारी (सेल्समेन) है जो झण्डियां बेचा करता है, और तो और वह एक

खोमचेवाला है जो दोपहर को स्कूल के अहाते में पकौड़े निकाला करता है।

इन सब कार्यों के करते रहते हुए भी वह समाज में शिक्षण-कार्य भी करता है। वेतन उसको शिक्षण-कार्य के नाम पर दिया जाता है, पर कार्य उससे दूसरे भी लिए जाते हैं। फिर भी वह अपना कार्य मुस्तैदी से करता है। विद्यालय में नियमित रूप से उपस्थित होता है, नियमित रूप से डायरियाँ भरता है, पाठन-कार्य का लेखा वार्षिक, मासिक व दैनिक रखता है। फिर पाठन-कार्य निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार नियमित रूप से करता है। छात्रों के लेखन-कार्य की जाँच करता है। वाणी और हाथ दिन-रात विश्राम नहीं लेते। थकान उसे नहीं आती! क्योंकि वह मानव नहीं, मशीन है। मशीन के पुर्जे भी तेल माँगते हैं, सफाई चाहते है, पर शिक्षक की कौन सुनता है? 'शिक्षक समाज का निर्माता है', उसका निर्माण कौन करे! छात्रों को कहता हूँ, बतलाता हूँ, प्रत्येक बालक को इतनी कैलोरी चाहिए, इतने विटामिन चाहिए, इतनी फैट चाहिए, इतनी मात्रा मे दूध, दही, मक्खन, घी, फल और हरी सब्जियाँ चाहिए। पर शिक्षक को स्वयं क्या और कितना चाहिए? न समाज ने इस ओर कभी सोचा, न सरकार ही सोचने का प्रयास करती है। पर शिक्षक बेचारा जैसे-तैसे अपना कार्य करता चला जाता है। कभी बीमार, तो कभी बच्ची की शादी, तो कभी माता-पिता की मृत्युवश अवकाश ग्रहण करने को बाध्य हो जाता है और एक दिन वह भी आ जाता है, जब विभाग की सेवा करते-करते उसे पचपन वर्ष पूरे हो जाते हैं। उसकी सेवाओं के प्रतिकार में वह नजारा भी देखते ही बनता है जब वह दफ्तर के बाबुओं के सामने अपने अवकाश की मंजूरी, वार्षिक वेतन, वृद्धि, पेंशन केस की पूर्ति के लिए चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी के रूप में खड़ा गिड़गिड़ाया करता है। समाज के जिस कारखाने से ये बाबू निकले, ये अफसर बने, वे इस बात को कुछ देर के लिए न जाने क्यों भूल जाते हैं कि अन्ततः वे सब उस कारखाने की प्रोडक्शन है, पैदावार हैं जिनके निर्माता आज स्वयं उनके सामने खड़े हैं और वे कुर्सियाँ तोड़ रहे है। बेचारा सहनशील शिक्षक इन सबको सहन करता चला जाता है, फिर भी ताडना मिलती है—धैर्य नहीं है, सब्र नहीं है।

समाज में आज शिक्षक की स्थिति ताँगे के घोड़े-जैसी है, जो न बाएँ देख सकता है, न दाएँ। उसे निरंतर सीधे अपने कर्तव्य-पथ पर सरपट भागते रहना पड़ता है। समाज में मामूली-से वेतन पर अपने दादा-दादी, माता-पिता, स्त्री-संतान का भरण-पोषण करे तो कैसे? यही एक प्रश्नचिह्न सदा-सर्वदा उसके सामने बना रहता है। मामूली-से वेतन के अतिरिक्त उसके आय के स्रोत नहीं। ट्यूशन की बात उन मुट्ठी-भर शिक्षकों पर लागू हो सकती है जो शहरो मे लगे हुए हैं, अन्यथा अधिकांश शिक्षक ऐसे क्षेत्रों में जीवनयापन कर रहे हैं जहाँ ट्यूशन खुलकर विश्राम कर रही है। अवकाश के क्षणों में अध्यापक को अर्थो-

पार्जन करने की राज्य की ओर से कोई सुविधा नहीं; उल्टे किसी काम पर मजबूरीवश लग जाने पर सरकारी कर्मचारी होने के नाते अर्थोपार्जन नहीं करने दिया जाता। यह कैसा विधान है, कैसी व्यवस्था ? अपने और अपनी संतान के पेट के लिए जब वह वेतन-वृद्धि की मांग करता है, मेंहगाई-भत्ते की याचना करता है तो उसका मुंह बंद करने के लिए सरकार उसे ऐसे कमीशन के भरोसे छोड़ देती है जो लाखों-लाख रुपये अपने दफ्तर पर खर्च कर उसे देता है पाँच या दस रुपयों की मामूली-सी तरक्की। फिर कमीशन भी ऐसे जिन्होंने शिक्षक-जीवन को न कभी देखा, न कभी अनुभव किया। एक वर्ष का सेवारत नया शिक्षक और बीस-पचीस वर्ष का सेवारत पुराना शिक्षक—सब बराबर। समानता के सिद्धान्त का अक्षरशः पालन करनेवाले यह न्यायाधीश अपनी न्याय की तराजू क्या उस समय भी अपने साथ रखते हैं जब मंत्रियों के लड़कों की शानदार शादियों में हजारों रुपये मात्र महफिलों में होम दिये जाते हैं। अधिकारियों के आलीशान बंगले खड़े हो जाते हैं। और तो और, पी. डब्ल्यू. डी., सिंचाई, पुलिस, राजस्व, आदि अनेकानेक विभागों में कार्यरत ऐसे अफसर और कर्मचारी जिनका वेतन शायद एक वरिष्ठ अध्यापक से कम ही होगा, पर शादी, समारोह, सामाजिक उत्सवों में केवल बिजली की रोशनी पर सैकड़ों का बिल चुकता होता है। राज्य की ओर से उनके लिए ऐसी क्या व्यवस्था हो सकती है जिनसे वे इतना अर्थोपार्जन कर सकें और शिक्षक बेचारा अपने भाग्य को कोसता रहे। भाग्य की यह कैसी विडम्बना है ?

आजकल एक और फैशन चल पड़ा है, शिक्षक और उसके पूर्वजों का एक और उपहास-अभियान का श्रीगणेश हो चुका है। 'आओ गुरु !', 'बैठो गुरु !', 'क्यों गुरु, क्या बात है ?'—इस प्रकार के वाक्य-उच्चारण समर्थ गुरु रामदास को गुरु मानकर शिवाजी नहीं, औरंगजेबी तबके के मामूली साधारण श्रेणी के ईर्ष्यालु प्राणी किया करते हैं जिन्हें न गुरु की गरिमा का ज्ञान है, न उसके पद की जानकारी। चाय के आधुनिक प्याले की तरह बेचारा गुरु हाट-होटलों में स्वच्छन्द रूप से सबका तकिया-कलाम बना हुआ है। उसका अपना कोई तकिया नहीं, यह भी कोई शिक्षक ही का दोष है ? समाज और सरकार की चक्की के दो पाटों के बीच आज के शिक्षक को पिसते देखकर बरबस कबीर की उन पंक्तियों का स्मरण हो आता है—

चलती चक्की देखकर, दिया कबीरा रोय,
दो पाटन के बीच में, साबित बचा न कोय।

आज शिक्षक को झूठे और कोरे आश्वासनों से सहलाया जाता है। समाज के निर्मातामात्र के नारों से अभिनंदित किया जाता है। उसकी सुख-सुविधा, मान-सम्मान के अधिकार मृगतृष्णा बने हुए हैं। गुरु वशिष्ठ, विश्वामित्र, परशुराम,

द्रोणाचार्य एवं ऋषि भारद्वाज की ये संतानें आज न केवल पीड़ित, शोषित एवं संकटग्रस्त हैं अपितु अनाज जैसी आवश्यक वस्तु की गारण्टी तक प्राप्त नहीं है—समाज की इस विकृतावस्था में संतरी से लगाकर मंत्री तक चैन की बंशी बजा रहा है। यहाँ शिक्षक की करुण पुकार नक्कारखाने में तूती की आवाज सिद्ध हो रही है। कौन सुने शिक्षक की करुण पुकार ? सब मस्त पर शिक्षक त्रस्त !

साहित्य की परिक्रमा और मेरा देश

प्रेमपाल शर्मा 'खकर धज'

मेरे सामने मेज पर अनेक पत्रिकाएँ पड़ी है, उन पत्रिकाओं में मैं अपने देश को खोज रहा हूँ — उस देश को जो गाँवों का देश है, खेतो-खलिहानों, अमराई-मन्दिरो, साधु-सन्यासियो, ढोगियों-भ्रष्टाचारी लोगों का और निम्नतम जीवन-स्तर बितानेवालो का देश है; गरीबी का ताण्डव नृत्य और नारो पर जिन्दगी बिताने वाले नेताओं का देश है। वह देश जिसमें शोषण की पराकाष्ठा है। लाल फीताशाही के अजगर की गिरफ्त मे योजनाओ की टूटती पसलियोंवाला देश। लेकिन इन पत्र-पत्रिकाओं में मुझे मेरे देश के दर्शन नही होते। उस देश के दर्शन नही होते जहाँ एक कमरे में चार परिवार जीवन गुजारते हैं, दीवार में लगी खूंटियों का किराया देते हैं, व्याज में अपनी जवान बेटियों को देते हैं। न्याति के चक्र मे उलझकर घर, बैल, खेत तक मृत्यु-भोज के लिए बलि चढ़ा देते हैं, जवान बेटो की बेकारी में जवान बेटियाँ अपना शरीर बेचकर अफीमची बाप की अफीम जुटाती है। इन पत्रिकाओं मे कैबरे हैं, मुजरे हैं, डिस्कोथिक हैं, अत्याधुनिक वस्त्रों की प्रदर्शनी और ताकत बढ़ानेवाली दवाइयो के विज्ञापन है। पोलैण्ड की फिल्मों के अश्लील चित्र हैं। अभिनेताओ-अभिनेत्रियों के फोटो हैं, फिल्मे हैं, अमूर्त चित्रकला है। घर की सजावट के तरीके हैं (जो हजारों रुपये माहवार कमानेवालों के लिए ही सम्भव हैं), आधी दुनिया में जनरल बेवूर की पत्नी हैं, मन की उलझन है और है साप्ताहिक भविष्य, विदेशी कहानियों के अनुवाद, गेलार्ड में बैठने वाले, शराब पीकर मस्त होनेवाले, एम्पाला मे सैर करनेवाले कहानी के पात्र हैं। नेताओं के फोटो, संसद के अधिवेशन, रंग-व्यग्य, कार्टून-कोना, उलझी कवितायें, नीरस कहानियाँ और सस्पेंसवाले उपन्यास हैं। विदेशी पुस्तकों के सार-संक्षेप हैं। मैं अपने गाँव को ढूंढता हूँ। मैं अपने आसपास के गाँवो को ढूंढता हूँ। मैं अपने परिचित चरित्रो के आसपास घटनेवाली घटनाओं की कहानियाँ ढूंढता हूँ। नहीं मिलती, पत्रिकाओं को देखकर मन प्रसन्न होता है। लगता है सचमुच गरीबी दूर हो रही है। क्योंकि मेरे देश मे वैभव है, सब आराम है।

लोगों का जीवन-स्तर बहुत ऊँचा है, बैल बॉटम, लम्बे कॉलरों की कमीज, स्लेक्स, पैरेलल, नाइटी, गरारा, शरारा, एलीफेण्टा मेरे देश की राष्ट्रीय पोशाक हैं। यहाँ कोई नंगा नही, कोई भूखा नहीं कोई गरीब नही। कभी-कभी पत्रिकाओं में यह भी आ जाता है ठीक उसी तरह मानो कोई अमीर साल मे एकाध बार अपनी अमीरी का स्वाद बदलने गरीब का मुखौटा धारण कर ले। मेरा देश दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, कानपुर, लखनऊ, इलाहाबाद में ही सिमटकर रह गया है, वह भी केवल भव्य भवनो तक। ताजमहल, सन एण्ड सैण्ड होटल तक, या अशोका तक। मेरे देश में लीडो है जहाँ शाम की चाय साढ़े छह और डिनर दस रुपये का मिलता है। पत्रिकाओं और पत्रों से तो ऐसा ही लगता है, कि मेरा देश गाँवों से गायब हो गया है या गाँव मेरे देश से गायब हो गये है। क्या वास्तव में ऐसा है ? तो क्यो आज मेरा घर शाम तक धूल से भर जाता है ? क्यों मैं ऐसी जगह पर हूँ जहाँ मेरे चारों ओर अधनंगे, भूखे, चिचुके चेहरों का जमघट है ? क्यों घास से निकले दानों को रांधकर खानेवाले लोग है ? और क्यो राशन कार्ड के तीस पैसे के लिए अपना सतीत्व बेचनेवाली नारियां है ? आज किसी उपन्यास में न 'गोदान' का होरी है, न 'मैला आचल' का डॉक्टर, न 'तीसरी कसम' का हीरामन है, न 'बूढी काकी' की काकी। प्रेमचन्द के बाद रेणु और नागार्जुन या अपवाद-स्वरूप 'राग दरबारी' और 'आधा गाँव' को छोड़कर कौन-सा उपन्यास है जिसमें मेरा देश या मेरा गाँव हो। देख रहा हूँ गोयल नॉवल स्टोर पर ढेर सारे नये चमचमाते उपन्यास आये है। जी ललचा उठा है। लेकिन देख रहा हूँ—आधा स्टोर गुलशन नन्दा, साधना प्रतापी, शेखर, राजवंश, कर्नल रंजीत, चन्दर, इब्ने शफी, अकरम इलाहाबादी, प्रेम वाजपेयी से भरा है जिनका हर पात्र अलौकिक, है—कारवाला, बंगलेवाला, करोड़पति होकर गरीब लड़की से प्रेम करनेवाला। कही मेरे गाँव की झमकू नहीं मिलती जो गोबर बेचकर, लकडी बेचकर अपने अपाहिज पति का पेट भरती है। "क्या बेदी की 'एक चादर मैली-सी' मिलेगी ?" मेरे पूछने पर दूकानदार हँसता है; ग्राहक हँसते है। तारा बाबू की 'दुनिया एक बाजार' की प्रति खरीदते समय सब ठहाके लगाते हैं। वे मुझे गुलशन नन्दा पढने की सलाह देते हैं, मैं मूर्ख उनकी सलाह न मानकर उनके शब्दों में उबानेवाले साहित्यकार पढ़ता हूँ। समानान्तर साहित्य से मेरे स्टोर्स मे अनेक ऐसे लेखक मिल जायेंगे जिनके पात्रो के पास केवल कामवासना की पूर्ति के अतिरिक्त कोई काम नही, हर दर्जे की अश्लील किताबें। कक्षा में एक दिन अचानक छापा मारने पर पाली जैसे छोटे शहर के पन्द्रह-सोलह वर्ष की उम्रवाले लड़कों की पाठ्य-पुस्तकों में से आठ अश्लील किताबें बरामद हुई। अश्लील पत्रिकाओं पर रजिस्ट्रेशन नम्बर तक। उधर जोधपुर विश्वविद्यालय में 'आधा गाँव' पर बवण्डर उठ खड़ा हुआ; यद्यपि बवण्डर खड़ा करनेवालों में शायद ही कोई ऐसा हो जिसने अश्लील

किताबें न पढ़ी हों। फुटपाथी साहित्य को पढ़ने पर एक नवीन तथ्य सामने आया कि मेरे देश के आदमी के पास कोई काम नहीं है, सिवाय प्रेम करने के। वह हर जगह प्रेम करता है—घर में, बाहर सड़क पर। ये साहित्य, ये पत्रिकाएँ हमें क्या दे रही है, क्या नहीं—पाठक स्वयं निर्णय करें।

डायरी

एक दिन की डायरी

गोपालप्रसाद मुद्‌गल

मैं बीमार हूँ। सड़कवाले कमरे में पड़ा हूँ। तीन वर्ष का प्रगीत अपनी ज़िद लिए बैठा है। अपनी मम्मी से लड़ रहा है कि उसने रसोईघर की किवाड़ क्यों लगा दी? इसका बदला वह छोटे पड्डे को डण्डे मारकर ले रहा है। उसकी मम्मी कह रही है कि किवाड़ मैंने लगाये है, तुम पड्डे को क्यों मार रहे हो? किन्तु वह अपनी धुन में मस्त है। वह ऐं ऐं ऐं···की रट लगाये है। हाथ-मुँह धुलाने में मुँह फुला रहा है। 'रसोईघर की किवाड़ क्यों लगा दी?' बस, इसी रिकार्ड को बजा रहा है। उसकी मम्मी बार-बार अपनी ग़लती मान रही है किन्तु उसकी बालहठ सबके सिर पर है और मैं बीमार हूँ।

कमरे में चिड़िया ची ची-ची-ची करने में व्यस्त है। कभी इधर और कभी उधर। केवल फुर्र-फुर्र और ची-ची की धुन लिए है। कभी तसवीर की किनोर पर पंख खुजलाती है, कभी चोंच को पैनी करने को चौखटे पर इधर-उधर रगड़ रही है। मैं चाहता हूँ यह चुप हो जाय किन्तु उसे दूसरे के दु:ख से क्या! वह तो प्रगीत की तरह गीत गाने में मस्त है। कभी तसवीर से गर्डर पर तो कभी जंगले की तानों से रोशनदान के आर-पार। मेरे न चाहने का उस पर कोई असर नहीं। उसकी किल्लोल चल रही है और मैं बीमार हूँ।

कमरे के बाहर मेरे छोटे भाई का कमरा बन रहा है। दोनों मिस्त्री पत्थर छाँटने में मस्त हैं। उनके हथौड़े और छैनी की आवाज मेरे भाई को खूब रुचि रही है, दोनों मिस्त्रियों की रोटी भी सीधी हो रही है किन्तु कर्ण-कटु आवाज ने मेरी नींद हराम कर दी है। सभी को मालूम है कि मैं बीमार हूँ किन्तु उनकी खट-खट और खुट-खुट बदस्तूर चालू है।

और लीजिए, ईंट ढुलानेवालों ने तो ग़जब ही ढहा रखा है। ईंट के ट्रक का आना-जाना ही कम सिर-दर्द नहीं है, फिर ईंटों का खलाना एक अजीब तमाशा है। ईंटों के गिरने की आवाज अच्छे आदमी को भी बीमार कर दे; फिर बीमार पर क्या बीते यह तो केवल वही जान सकता है। मजदूर ईंटों को

बेदर्दी से फेंकने में मशगूल है, उन्हें दूसरे की कोई चिन्ता नहीं। उन्हें अपने काम-से-काम और मैं बीमार हूँ।

इन सबसे बढ़कर सिरदर्द बना हुआ है म्यूनिसिपल इलेक्शन। चुनाव-चर्चा तेजी पर है। चारों ओर वोट के लिए चिल्लपों हो रही है। माइक ने तो कमाल ही कर रखा है। मेरे कमरे के तीनों दरवाजों, दोनों खिड़कियों और चारों रोशनदानों से जो खुलकर आवाज आ रही है उससे मेरी नींद हवा हो गई है। इच्छा होती है मैं इनके खिलाफ प्रचार करूँ किन्तु मैं तो बीमार हूँ।

चुनाववाले और कान खा रहे हैं। उनको तो चैन नहीं किन्तु मैं स्वयं बेचैन हूँ। वे बेचैन को चैन से कोसों दूर रखना चाहते हैं। चुनाव में मेरे एक चचेरे भाई, दूसरे मेरे हितैषी के पिताजी तथा तीसरे मेरे जिगरी दोस्त वार्ड नं० छह से खड़े हैं। किसके स्वर में स्वर मिलाऊँ, समझ में नहीं आता। उन्होंने मेरी बीमारी और बढ़ा रखी है। वे कहते हैं, मैं जल्दी खाट छोड़ दूँ किन्तु मैं चाहता हूँ कि तीनों का बना रहने के लिए बीमार ही बना रहूँ तो अच्छा है। तीनों पर अपनी धुन सवार है और मैं बीमार हूँ।

यह लो, बाल-मन्दिर के एक युवक आ पधारे। सरकारी नौकरी की तलाश में हैं। वे चाहते हैं कि यदि मैं···तक चल सकूँ तो उन्हें लैब-ब्वॉय की नौकरी मिल जायेगी। उन्हें कैसे समझाया जाय कि वहाँ तो···आदमी लगेगा किन्तु उन्हें कोई आशा की किरण दीख रही है। वे अपने लोभ के लिए मुझे लिवा ले जाने की जिद में हैं। मैं बीमार रहूँ या अच्छा उन्हें कोई मतलब नहीं, उनको नौकरी मिलनी चाहिए।

युवक से छुट्टी मिली कि आ गये युवक के साथ उनके सिफारिशी, और मेरे मित्र। फिर पुराना रिकार्ड चढ़ गया। मैं बेहद चिढ़ रहा हूँ किन्तु उन्हें कोई चिन्ता नहीं। मैं अपनी बात कह रहा हूँ किन्तु उन पर धनहरण का भूत सवार है। किसी भी तरह धन आये, उनके लम्बे-चौड़े प्लान हैं। किसी को नौकरी दिलाने के आश्वासन से या किसी को बी. एड. में दाखिला दिलाने के लालच से। वे भैंस समेत खोया करना चाहते हैं। मेरे सहारे भी उन्हें धन हड़पने की सूझी है। उन्हें कैसे समझाऊँ कि इन तिलों में तेल नहीं। उन्हें कैसे नीचे लाऊँ? दलील देने से मजबूर हूँ क्योंकि मैं बीमार हूँ।

उनसे पिण्ड छूटने भी नहीं पाया कि दस-पन्द्रह लम्बे रजीते लिए आ धमके साहित्यिक पड़ोसी श्री भटनागर। दैवयोग की बात, उन्होंने भी आज ही डायरी-शैली में उपन्यास लिखना प्रारम्भ किया है। हरेक नयी उपलब्धि को दुहराना चाहते हैं। उन्होंने अपने रामराज की पुनरावृत्ति के लिए मुझे ही उप-युक्त समझा। मैंने भी शिष्टाचार के नाते सुनने की उत्सुकता ही जाहिर की क्योंकि मना करके असाहित्यिक होने का भय था। खैर, वे सुनाते रहे, मैं सुनता

रहा। बीमार दिमाग ने साठ प्रतिशत से अधिक ग्रहण कर उत्तीर्ण होने के लिए प्रथम श्रेणी से अधिक अंक पा लिये थे किन्तु उनकी डायरी की कड़ी कहीं-कही एकदम टूटती-सी अर्थ को अवश्य खत्म कर रही थी किन्तु मुझे 'हाँ, हूँ' करने में कोई आपत्ति नहीं थी। सौभाग्य से साहित्यिक मित्र की खोज मे पड़ोसी ग्राम सिनसिनी के एक अध्यापक आ धमके और उनका हनुमान-चालीसा अधूरा ही रह गया। मैंने सोचा, मुझ बीमार को राहत मिलेगी किन्तु उनका एक वाक्य मुझे और आफत दे गया। श्री भटनागर ने कहा—"मैं स्नान कर आऊँ, आप बातचीत कर लीजिये।" मैं जिससे जितना बचना चाहता था उतनी ही परेशानी और लद गई। श्री भटनागर साहब चले गये और उनकी भगत मैं बजाता रहा। वे कुछ उलाहने देते रहे। उन्हें कोई चिन्ता नहीं कि मैं बीमार हूँ।

सच मानो वणिक-बुद्धि चल रही है। प्रत्येक अपने लोभ पर दूसरे का हिमालय जैसा लाभ होम करने को तैयार है। हरेक को अपना लाभ ही अर्जुन की चिड़िया का मस्तक बना है। मैं किससे कहूँ ? नक्कारखाने में तूती की आवाज कौन सुनता है ! सब अपनी-अपनी धुन मे है और मैं बीमार हूँ।

डायरी के पन्ने

योगेशचन्द्र जानी

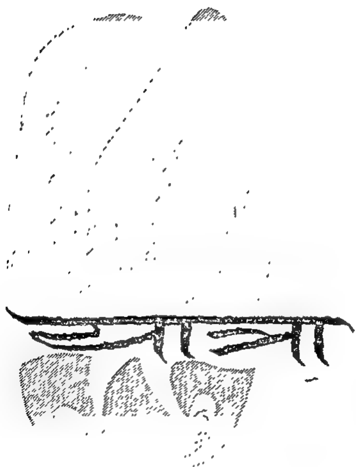
दिनांक···आज उसने पूछा था कि साहब 'पवन' शब्द का सन्धि-विच्छेद क्या
होगा ? उसके प्रश्न ने मेरे अथाह ज्ञान-सागर का मंथन कर दिया, किन्तु किसी
अमृत की उपलब्धि नहीं हुई। उसे अलाज सम्बोधित कर, सादेश स्वस्थान ग्रहण
करा दिया ! उस छात्र की अल्पज्ञता पर मैं आज खूब हँसा—भला मूल शब्द का
सन्धि-विच्छेद कर कोई महान शोधकार्य करना चाहता है। व्याकरणाचार्य बनने
की लालसा में मेरी ज्ञान-निधि को अपनी कसौटी पर कसना चाहता है। मैं
अपनी निधि को सगर्व श्रेष्ठ घोषित करना प्रथम कर्तव्य समझता हूँ।

दिनांक···मुझसे आज पुन अगली कक्षा मे पूछा गया, 'पवन' शब्द का सन्धि-
विच्छेद क्या होगा ? प्रश्न उठते ही मैं आगबबूला हो गया—प्रश्न पूछनेवाले
की जमकर पिटाई हुई, साथ ही मेरे ज्ञान को सार्थक न समझनेवाले पहली
कक्षा के छात्रों की भी।

दिनांक···आज मैंने प्रधानाध्यापक को उच्च प्राथमिक विद्यालयों की उच्च कक्षाओं
के भाषा-अध्यापन का अनुभव सुनाते-सुनाते 'पवन' शब्द के सन्धि-विच्छेद का
प्रश्न भी उनके सम्मुख रख दिया। अपनी प्रतिभा को सर्वोच्च मानते हुए मैंने
विज्ञापित कर दिया कि 'पवन' शब्द मूल शब्द है। मेरी बात सुनकर उन्होंने
कहा—अच्छा, कल बात करेंगे।

दिनांक···आज प्रधानाध्यापक जी ने मुझे बुलाया। उनके मन में भावों का ज्वार
उमड़ रहा था। 'पवन' शब्द की सन्धि का प्रश्न सप्रमाण सुलझाकर मुझे दिया।
पो+अन=पवन (अयादि संधि)। ओ के बाद असमान स्वर होने पर उसका अव्
हो जाता है। मैं उनका यह वाक्य पढ़कर—'सही ज्ञानार्जन के लिए विषय की
अनन्त गहराई में डूबना आवश्यक है'—पानी-पानी हो गया।

दिनांक···आज कक्षा में 'पवन' शब्द का सन्धि-विच्छेद पूछनेवाले छात्रों को
सप्रमाण सन्धि-विच्छेद बताया। उनके सम्मुख लाख मना करने पर भी बुद्धि ने
अपनी अल्पज्ञता स्वीकार की। साथ ही प्रधानाध्यापक जी का भी आभार माना।
शिक्षक के परमावश्यक अनंत गुणों में से एक 'अल्पज्ञता स्वीकारना' ग्रहण कर
सका। सोचता हूँ अनवरत अध्ययन अनंत गुणों का जन्मदाता है।



मनसा मन्दिर की यात्रा

□

श्रीराम शर्मा

'कल-कल निनादी झरने, हरित वस्त्रावृत पर्वतावलि और नानाविधरूपा प्रकृति की वह सुरम्य छटा'—आज भी जब उसका स्मरण होता है तो मानसिक रूप से मैं वर्षानुवर्ष पूर्व के उसी वातावरण के मध्य-सा स्वयं को पाता हूँ। नीमकाथाना के उत्तर-पश्चिम में अरावली की अत्युच्च पर्वतीय उपत्यकाओं में स्थित 'मनसा-देवी' की यात्रा ने हम सबके मन में एक 'थ्रिल'-सा पैदा कर दिया था। पन्द्रह बालचर, एक वयोवृद्ध शिक्षक और मैं—निकल पड़े मनसा माता की तीर्थयात्रा पर।

उन दिनों मैं गुहाला (सीकर) में पढ़ाता था। शिक्षक-जीवन के प्रारंभ में यात्रादि के लिए विशेष उत्सुकता रहा ही करती थी। गुहाला से मनसा देवी की यात्रा के लिए दो मार्ग हैं—एक सड़कवाला, दूसरा सीधा—केवल चार मील की दूरी से ही सीधा पर्वतों में से होकर। निर्णय हुआ कि पर्वतोंवाले रास्ते से वहाँ जायेंगे। हमारे बीच इस मार्ग की एक ही बाधा थी—श्री बहोरीलाल—हमारी शाला के वयोवृद्ध शिक्षक। उनकी अवस्था का तकाजा था कि हम सड़कवाला मार्ग अपनाते, पर 'तन का प्रौढ और मन का युवक' वाली कहावत को चरितार्थ कर वे भी हम युवकों की टोली के ही साथ हो लिये।

शनिवार, दो बजे, मध्याह्न बाद हमारी यात्रा शुरू हुई। हमें पता था कि भोजन बनाने का सारा सामान मनसा मन्दिर में मिलेगा, अतः बालचर टोली ने अपने-अपने कन्धों पर भोजन-सामग्री ले ली। रास्ते में केवल एक गाँव पड़नेवाला था—'मणकसास'। हमारा पहला पड़ाव इसी ग्राम का रहा। एक घंटे की इस यात्रा को बालकों ने दौड़ते-कूदते, गाते-नाचते केवल चालीस मिनट में तय कर लिया। 'मणकसास' से ठीक आगे अरावली की वह दुर्निवार चोटी थी, जिसके ठीक पास से हमें मनसा मन्दिर पहुँचना था। श्री बहोरीलाल ने हम सबको हिदायतें दीं, तीन मील की चढ़ाई के लिए तैयार होने को कहा, गिनती

की, कुछ विश्राम किया, सबने पानी पिया और अब हमारी यात्रा शुरू हुई।

एक मील की चढ़ाई के बाद कुछ बालक धीरे चलने लगे। कुछ छात्रों का जोश तो अभी भी वैसा ही बना हुआ था, मानो अभी दो कदम में ही इस चोटी को लांघ लेंगे। पहाड़ी पगडंडी के दोनों ओर के पेड़ों को निहारते, चिरमियां (गुजिया) तोड़ते और डामरिया (एक पहाड़ी रसाल) खाते सभी लोग चले जा रहे थे। छात्र बीच-बीच में 'भारतमाता की जय', 'बजरंग बली की जय' और 'हर-हर महादेव' के नारों से पर्वत-प्रदेश को गुंजाते जा रहे थे। वे एक आवाज लगाते, दूसरी आवाज पर्वत से प्रतिध्वनि के रूप में आती और छात्र आनन्दमग्न हो हँसी का ठहाका लगाते।

इस प्रकार हँसते-हँसाते, उछलते-कूदते हमने दो मील से अधिक की चढ़ाई पूरी कर ली। करीब-करीब सभी लोगों को हलकी-सी थकान महसूस होने लगी थी। श्री बहोरीलाल, जो करीब एक फर्लांग पीछे-पीछे चल रहे थे, थककर चूर-चूर हो गये थे। बाध्य होकर मुझे उनके साथ-साथ चलना पड़ रहा था। कहना चाहिए अठारह वर्ष की वय में ही वयोवृद्धता का स्वांग करना पड़ रहा था। चल रहा था पीछे-पीछे पर मेरा मन छात्रों की उस टोली की हर उछाल से पहले उछल पड़ता था। कुछ देर के लिए सब रुके, हलका-सा विश्राम किया, अपनी-अपनी केतलियों से पानी पीकर आगे की यात्रा शुरू की।

यहाँ से थोड़ा आगे ही एक समस्या खड़ी हो गई। इस पर्वत-प्रदेश में निर्द्वन्द्व, एकछत्र अधिकारी के रूप में विचरण करने वाले लंगूरराज और उनके दल को हमारा यहाँ आना बड़ा खटका। छात्रों की हर आवाज के बाद हूँक-हूँक की गगनभेदी हुंकार लगाते थे बन्दर पर्वतों की टहनियाँ तोड़ने लगे। इधर छात्रों का भी कौतूहल बढ़ रहा था। दोनों ओर लंगूरों की टोलियाँ, बीच में हमारा दल। छात्रों ने लाठियाँ ले रखी थीं। बन्दर खीसें निपोरते, किट-किट और हूँ-हाँ करते हमारे साथ चले जा रहे थे। एक-दो छात्रों ने बन्दरों को छेड़ने की हरकत की तो तुरन्त हमने रोका क्योंकि इससे इस शीत-युद्ध का युद्ध में बदल जाने का खतरा था।

जब लंगूरों की संख्या बढ़ने लगी तो हमने एक बार ठहरने का निर्णय किया। न हम वापस लौट सकते थे और न निष्कंटक रूप से आगे जा सकते थे, क्योंकि बिना राम के इस वानर दल से भिड़ंत अवश्यम्भावी लगती थी। सोचा, शायद हमारे ठहरने से यह टल जाय। यदि नहीं तो फिर हमारे पास दानव दल तो था नहीं, अतः निर्णय किया कि कुछ ठहरकर निर्णय लिया जाय। हमारा ठहरना था कि अगले पचास कदम जाकर लंगूरराज की एक हुंकार के साथ सारा वानर दल भी उस पहाड़ी पगडंडी के बीचोंबीच आकर बैठ गया।

अब तो और भी मुसीबत खड़ी हो गई। उधर से भगवान भास्कर बड़ी तेज गति से अस्ताचल की ओर जा रहे थे, इधर युद्ध अवश्यम्भावी लगता था। बीहड़ वियाबान जंगल, संध्या का सान्निध्य और ऊपर से नर-वानर-संग्राम का संकट। सबने मिलकर मन-ही-मन मनसा माता का स्मरण किया। अभी कुल चार मील और चलना था—एक मील चढ़ाई और तीन मील आगे। फिर भी कुछ बैठकर सोचने लगे, इस विकट स्थिति को कैसे टाला जाय ?

हमारे इस नर-दल के बीच एक बालक मोहन यादव (जो अब थानेदार है) बहुत शैतान था। उसने हमसे नजर बचाकर एक चीज बन्दरों की ओर फेंकी। सारे बन्दर इसे युद्ध का संकेत मानकर उस पत्थरनुमा वस्तु पर टूट पड़े। वह जिसके हाथ लगी उसने देखा कि यह तो पत्थर नहीं, कोई और चीज है। अच्छी सुगंध देनेवाली, शायद खाने की हो। एक ने उसे मुंह से तोड़ा, तो बस लगा खाने। और फिर तो नजारा ही कुछ और था। छीना-झपटी और भाग-दौड़ ! दलपति को शायद यह अनुशासनहीनता नहीं भायी। वे भी दौड़कर वहां आये, जहां यह उछल-कूद चल रही थी। उनके हुंकार भरते ही सब बन्दर परे हट गये। उन्होंने उस चीज के टुकड़ों को उठाया, देखा, सूंघा और अधिक देर तक लोभ संवरण नहीं कर सके। एक-एक टुकड़ा उठाकर खाने लगे। पास बैठी एक छोटी बदरिया ने भी एक टुकड़ा उठाने की हिम्मत की तो वानर-राज ने उठकर उसे एक थप्पड़ जड़ दिया। बदरिया बेचारी चरांकर दूर जा बैठी। वे किटकिटाते रहे—पहले दांतों को, फिर उस खाद्य के टुकड़ों को।

हम सब बड़ी सतर्कता से सारी स्थिति को देख रहे थे। मोहन से पूछा तो उसने बताया कि उसने वानर दल की ओर अपनी मां द्वारा बनाई गई और अपनी गैया के सद्यजात घी से सनी मक्की की बाटी फेंकी थी। मक्की की बाटी गयी पर एक तरकीब दे गयी। मोहन ने एक पत्थर उठाया और पहाड़ की ढलान की ओर फेंक दिया। वानरराज ने देखा—मक्की की एक बाटी और, वे लपक पड़े पहाड़ की ढलान की ओर। फिर क्या था, इधर से पत्थर फेंके जाने लगे—जोर से, और जोर से, एक के बाद एक और फिर कई। वानर दल ने देखा, मक्की की बाटियां चली जा रही हैं। दौड़ मच गई उनमें, एक से दूसरा आगे जाने लगा वह सुवासित पदार्थ खाने—दूर, बहुत दूर नीचे तक। जहां से उनका तुरन्त लौटना कठिन था। मनसा माता की कृपा कहिये या मोहन की चतुराई, यह खतरा दूर हुआ और हमारा दल आगे बढ़ने लगा।

पहाड़ की चोटी पर चढ़कर ज्योंही एक सिंहनाद लगाया कि एक दूसरी आफत आ गयी। पं० बहोरीलाल जी ने बताया कि उन्हें कुछ भी सुनायी नहीं दे रहा है। एकदम श्रवण-शक्ति गायब, शायद यह थकान का परिणाम हो। कुछ दूर चलकर उन्होंने कहा कि वे अब एक कदम भी नहीं चल सकते। बड़ी

विलक्षण स्थिति थी, हमारी शुन नहीं रहे थे और अपने बुजुर्गाना अन्दाज में हमें कोसते चले जा रहे थे—"बहुत कहा कि सीधे मत चलो, पर माने नहीं। ये तो बच्चे थे पर तुम भी नादानी कर बैठे। सरकार को इतनी छोटी उम्र में इन्हें शिक्षक नहीं बनाना चाहिए था।" खैर, बड़ी मुश्किल से इशारों-इशारों में उनसे क्षमा-याचना की और धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगे। वैसे अब रास्ता सुगम था, अतः चलने में कोई कठिनाई नहीं हो रही थी।

संध्या का समय, भाद्रपद मास के वे अन्तिम दिन, हरिततृणावृत पर्वत-प्रदेश की शीतल, मंद और सुगन्धित वायु—यह आनन्द वर्णन का नहीं, अनुभूति का विषय था। चन्द्रोदय से पूर्व ही हम मन्दिर के समीप जा पहुँचे। अपनी मंजिल आयी देख छात्रों ने 'हर हर महादेव' और 'जै जै काली' के सिंहनादों ने वायुमंडल को गुंजाना शुरू कर दिया।

मनसादेवी के इस विशाल मन्दिर के सामने ही एक झरना है। जल अत्यन्त शीतल और मीठा। कुछ देर ठहरकर सबने उसका पानी पिया और तृप्ति की एक साँस ली। अरे, बहोरीलाल जी को सुनाई देने लगा। पानी क्या, यह तो चमत्कार है। "जय हो मनसा माँ तेरी, जगजननी, जगदंबे, तेरी माया अपार है।" पंडित जी कह उठे।

अपना-अपना भोजन कर सबने रात्रि में विश्राम किया। दूसरे दिन चूरमा, दाल और बाटी बनाकर मनसा माँ को भोग लगाया। मनसा माँ की यहाँ एक गुफा में प्राकृतिक प्रतिमा है—शिवलिंगनुमा, अमरनाथ की हिममूर्ति से बिलकुल मिलती हुई। जानकारों का कथन है इसे किसी ने बनाया नहीं, यह स्वयं पहाड़ चीरकर निकली थी। दर्शन, भोग, भजन और कीर्तन के बाद सबने भोजन किया। कुछ विश्राम करने के बाद उस पर्वत-प्रदेश की पुनः परिक्रमा की, झरने का शीतल मीठा जल पीकर मनसा माँ के दर्शनों के बाद लौटने की तैयारी हुई।

लौटने के लिए सड़कवाला मार्ग तय किया गया। सोलह मील के इस मार्ग में भी आठ मील का पर्वतीय इलाका और फिर छोटे-छोटे ग्राम और ढाणियाँ पार करते हुए रविवार की रात को आठ बजे हम गुहाला लौटे।

जीवन के चार दिन शेष थे

□

हुलासचन्द जोशी

सन् १९६४ के अक्तूबर माह में सीकर के पास एक गाँव के बाहर हमारा एन० सी० सी० का कैम्प लगा था। कॉलेज जीवन का मेरा वह पहला कैम्प था।

छोटी उम्र थी। उत्सुकता अधिक थी। प्रत्येक नये अनुभव के लिए तीव्र इच्छा रहती थी।

कैम्प का जीवन व्यवस्थित और आनन्ददायक था। सारा कार्य तेजी और स्फूर्ति से होता था। सभी को हुक्म था, 'प्रत्येक काम दौड़कर करो।'

सभी कॉलेजों को बारी-बारी से हर्ष-पर्वत तक पैदल यात्रा करनी थी। सुबह नाश्ता करके रवाना होते थे और दूसरे दिन शाम को वापस आ जाते थे।

आज हमारे कॉलेज की बारी थी।

एक काफिला धूल का गुब्बार पीछे छोड़ता आगे बढ़ रहा था। खेतों में फसलें खड़ी थीं। चार-पाँच मील का रास्ता बातों-बातों में कट गया।

अब पहाड़ की चढ़ाई शुरू हुई। पहाड़ दूर से जरूर देखे थे। नजदीक से देखने और चढने का यह पहला अवसर था।

दूर से पहाड़ की चोटी कोई खास ऊँची नहीं लगती थी। ऐसा विचार था कि अभी कुछ ही क्षणों में उसकी आखिरी चोटी पर होंगे। वृक्षों की हरियाली से घिरी प्रत्येक चोटी आखिरी चोटी लगती थी। ज्योंही उस चोटी को पार करते, उतनी ऊँची चोटी फिर सामने खड़ी मिलती। चोटी-दर-चोटी पार करते गये। कभी इस पहाड़ की घाटियों में जंगली जानवर घूमा करते थे जो प्रायः बन्दूक का निशाना बन चुके थे।

ऊपर तक पहुँचते-पहुँचते सब थककर चूर हो चुके थे। पुराने भैरव मन्दिर की कला को देखने का कौतुक इतना प्रबल रहा कि जब तक उसे पूरा देख नहीं लिया गया, किसी को भी थकान का भान नहीं हुआ।

बाँसों की घनी छाँह-तले प्रायः लोग सो चुके थे। ऐसा सुन्दर स्थान देखने का फिर कब अवसर आये, कौन जाने?

छः बजे तक सब नीचे गाँव में पहुँच गये। रात उसी गाँव में बितानी थी।

सभी कार्यों के बाद सब सिकुड़ते-कुलबुलाते-फुनफुनाते अपने-अपने कम्बलों को चारों ओर लपेटकर सो गये। रातभर साँयँ-साँयँ करती आँधी का जोर कम हो चुका था। आँख खुली तो सुबह हो चुकी थी।

धूल झाड़कर सब अपने कामों में लग गये।

दूसरे दिन भी पहाड़ की चढ़ाई थी। करीब यहाँ से डेढ़ मील दूर पहाड़ी पर पुराना गढ़ था। गढ़ के दरवाजे पर चमगादड़ लटक रहे थे। उनकी गंदगी से अजीब तीव्र गन्ध उठ रही थी। सभी नाक बन्द करके तेजी से दौड़ पड़ते थे। गढ़ का भीतरी भाग खुला और साफ था।

इतना बड़ा गढ़ मैंने पहले कभी नहीं देखा था। सब कुछ मेरे लिए नया था। प्रत्येक वस्तु को छू-छूकर देखता। अनेक कमरे और अनेक द्वार थे। हम न जाने किस द्वार से प्रवेश करते थे कि घूम-फिरकर वापस उसी स्थान पर आकर ठहर जाते थे।

अजीब भूलभुलैयाँ थी। फिर भी गढ़ का एक-एक कोना देख लिया था।

वहीं पर पानी के बड़े-बड़े हौद बने थे—बहुत ही गहरे और लम्बे-चौड़े। इतनी ऊँचाई पर इन चट्टानों को न जाने कैसे काटा और खोदा होगा—उस जमाने के लोग ही जानें।

न जाने कैसे थे वे लोग। मैं ही नहीं, सभी भावुक हो उठे थे। सूबेदार मूँछ पर हाथ रखे उस स्थान पर बैठ गये जहाँ कभी राजा बैठा करता था। एक व्यक्ति बता रहा था, 'यहाँ राजा बैठता था...यहाँ दरबार लगता था...' एक काल्पनिक नक्शा उस समय का उस व्यक्ति ने खींचकर रख दिया था।

मन भावुक हो उठा—काश, वे लोग कुछ क्षणों के लिए जीवित हो उठते! कहीं घोड़ों-सी खनखनाहट सुनाई दे जाती!

केवल कल्पना थी। घुटकर रह गयी। वर्षों पुराना किला सुनसान पड़ा था। कभी यहाँ पायलें रुनझुनाती थीं...तलवारें खड़कती थीं...घोड़ों की टापें गूँजती थीं।

आज यहाँ अभी कुछ शोर है, हमारे जाते ही वापस सूनापन उभर आयेगा। कुछ क्षणों के लिए किला जीवित हो उठा था।

छत की दीवार पर खड़ा होकर—झुककर मैं यह देखना चाहता था कि गढ़ की पहाड़ से ऊँचाई कितनी है और फिर वहाँ से पहाड़ की नीचाई
दोनों तरफ की दीवारों का सहारा लेकर मैं पाया

साथी ने हाथ पकडकर नीचे खीच लिया, 'चक्कर खाकर गिर गये तो नीचे से लाश लानेवाले नही मिलेंगे। घरवाले इन्तज़ार करते ही रह जायेंगे कि बेटा अब आये—अब आये।'

मन मारकर रह गया। नीचे पैरों के पंजो के बल खड़ा होकर जो कुछ दिखा उतने पर ही सन्तोष कर लिया।

अब काफी समय बाद लगता है कि मैं उस दीवार से गिर सकता था।

चमेली की बेल आँगन मे फैली थी। मन फूलों की ओर झुक गया। पहले कुछ झिझका किन्तु थोडी देर बाद बेल को पैरों तले रौंदता हुआ काफी अन्दर तक घुस गया और अच्छे-अच्छे दस-पन्द्रह फूल तोड लिए।

फूलों को सूंघना ही चाहता था कि हवलदार न जाने कहाँ से आ टपका, 'क्यों भाई ? फूलों की सुगन्ध कैसी है ?'

'अच्छी है !' मैंने छोटा-सा उत्तर दिया।

'अच्छी है तभी लगाये है। किन्तु इतना नही सोचा कि इतनी ऊँचाई पर इस बेल लगानेवाले को कितनी मेहनत करनी पड़ती होगी !' आगे उसने केवल इतना ही कहा, 'आखिर कॉलिज में पढ़ते हो—थोड़ी समझ रखो।'

हवलदार मुझ पर स्नेह रखता था। फिर भी वह सब-कुछ कह गया। मैंने फूल वापस बेल पर फेंक दिए।

दोपहर के बाद करीब तीन बजे वहाँ से कूच करने लगे। गढ़ के पिछवाड़े से उतरने का आदेश हुआ। रास्ता तग, पथरीला और टेढा-मेढ़ा था।

सभी तेज गति से उतर रहे थे—एक-दूसरे से धक्का-मुक्की करते। हवलदार ने तेज आवाज मे कहा, 'आहिस्ता और सावधानी से चलो। कंकरी महीन और फिसलने वाली है।'

परन्तु वहाँ कौन-सुनता था !

एक मोड बहुत ही तिरछा और ढालू था, साथ ही फिसलन। कुछ किस्मत वाले उसे भी उसी रफ्तार से पार कर गये।

फिर कुछ क्षणों में...ओह, उसे मैं कभी नही भूल सकूँगा। मैं उससे कुछ ही कदम पीछे था।

एक लड़के का पैर फिसल चुका था और वह लुढ़कता हुआ कई फीट नीचे जा रहा था। हवलदार अपने स्थान से उसकी सीध में उछलकर चिल्लाया, 'मूर्खो ! सावधान। एक लडका गिर चुका है।'

लड़का पेट के बल एक पत्थर में अटककर दोहरा हो गया। अगर कहीं और जगह से टकरा जाता तो...हवलदार उसे सम्भालने को आगे बढ़ा ही था कि किसी की अनजाने में लगी ठोकर से एक पत्थर ऊपर से गड़...गड़... गड़ करता लुढक पड़ा। पत्थर गति पाकर सनसना उठा। हवलदार चौंककर

दो-तीन कदम पीछे हट गया। पत्थर लड़के के सिर की सीध में था। कुछ क्षणों में...आह ! नव की आँखें मिच गयीं।

केवल बालिश्त भर पहले पत्थर, दूसरे खड़े पत्थर से टकराया और सिर से एक हाथ ऊपर की ओर होते हुए नीचे की ओर लुढ़कता हुआ चला गया।

कुछ ही क्षणों में मौत ने दो बार झपट्टे उस लड़के पर मारे थे। जीवन शेष था और मौत कुछ ही फासले से गुजर गयी थी।

कैसा भयंकर स्वरूप था उसका !

अब हवलदार को हुक्म देने की जरूरत नहीं पड़ी। सभी आहिस्ता-आहिस्ता उतरने लगे।

वे दिन अधिक समय तक सोच-विचार करने के नहीं थे। करीब पचास साठ कदमों बाद ही वही हलचल शुरू होने लग गयी थी। उस घटना का प्रभाव धीरे-धीरे कम होता चला जा रहा था। फिर भी एक टीस सबके मन में उभर चुकी थी।

केवल दो दिन की यात्रा थी। आज भी याद है। कई वर्षों बाद और भी ज्यादा याद आने लगेगी।

ऐसे अवसर तो फिर भी आ जायेंगे, किन्तु वे दिन !—कभी नहीं।

कश्मीर की यात्रा और हम

□

सुलतानसिंह गोदारा

किसी कवि ने दिल्ली की गर्मी के बारे में कहा है :

जून महीना बहे पसीना,
मुश्किल जीना,
भाड़ बनी है दिल्ली।

दिल्ली ही क्यों, मई-जून मे हमारे श्री गंगानगर की गर्मी भी थर्मामीटर के पारे को अधिकतम ऊँचाई पर पहुँचा देती है। ऐसे मे धरती के स्वर्ग कश्मीर की सैर और उसमें अपनों का साथ।

२६ मई की सुबह के छः बजे। एक हरे रंग की गाड़ी श्री गंगानगर से पंजाब जानेवाली सड़क पर निकली। रेडियो पर रामधुन आ रही थी, परन्तु कार में सवार छः यात्री अपनी ही धुन मे थे, जिनकी आँखों मे कश्मीर के झरने, पर्वत व बर्फ़ के रुपहले दृश्य अभी से प्रतिबिम्बित होने लगे। सूर्य देवता ने प्रखर किरणों से विदाई दी। दोपहर होते-होते अमृतसर आ गया। स्वर्ण-मंदिर व जलियाँवाला बाग, धर्म व शहादत के अमर प्रतीक, श्रद्धा से किस भारतीय का सिर नहीं झुक जाता? जनरल डायर की गोलियों के निशान अब तक शहर की छाती पर जड़े है, जो अंग्रेज़ो के अत्याचारों की कहानी स्वयं कहते हैं।

साँझ होने तक पंजाब पार कर लिया। मैदान पीछे रह गए, पहाड़ अगवानी करते-से लगे तथा सड़क घुमावदार चलने लगी। बल्बो के जलने के साथ ही हमने जम्मू शहर मे प्रवेश किया। जम्मू, कश्मीर के स्वर्ग का प्रवेश-द्वार है। जम्मू से श्रीनगर की हवाई दूरी तो थोड़ी-सी है परन्तु सड़क पूरे एक दिन में पहुँचती है। ऊधमपुर, कुद, बनिहाल आदि रास्ते के मुख्य ठहराव हैं। सड़क सामरिक महत्व की है। इसे नेहरू-सुरंग ने काफी छोटा कर दिया है जो लगभग दो मील लम्बी है। इसे पार करने पर सड़क कुछ झुकने लगी। चलते-चलते अचानक प्रकृति का पर्दा उठा और कश्मीर की घाटी आँखो के सामने थी।

कश्मीर की घाटी हिमाचल पर्वत श्रेणी के चट्टानों के हृदय मे जड़ा हुआ रत्न है। कल-कल करते झरने, चिनार के झुंड, धान के खेत, नीले आकाश का दर्पण—बस देखने की ही चीजें हैं। यह घाटी ८४ मील लम्बी व २५ मील के लगभग चौडी है। श्रीनगर इस घाटी का प्रमुख नगर व राज्य की राजधानी है। श्री का अर्थ सम्पत्ति या ज्ञान है तथा नगर का शहर। कभी श्रीनगर एशिया मे विद्या का प्रमुख केन्द्र था। यह झेलम नदी के दोनों किनारों पर बसा है। ये किनारे नौ पुलों द्वारा मिलाए गए हैं।

यूरोप मे, वेनिस जल के अन्दर बसा है। वहाँ एक कहावत भी है कि 'See Venis and die.' किन्तु श्रीनगर तो उससे कहीं अधिक सौन्दर्यशाली है। इसकी विशेषता इसका स्वाभाविक सौन्दर्य है, न कि कृत्रिमता। इस नगर के चारो ओर सदैव बर्फ से ढकी रहनेवाली ऊँची-ऊँची पर्वत-श्रेणियाँ नजर आती हैं जिनके नीचे देवदार के सुन्दर घने जंगल व कल-कल करती नदियाँ बहती हैं। श्रीनगर मे मनुष्य की कृति व प्रकृति का मनोरम समन्वय हुआ है। नौका द्वारा श्रीनगर की सैर का अपना ही आनन्द है। यदि हम डल से प्रस्थान करें तो पहले मिशन हॉस्पिटल व गवर्नमेंट हॉस्पिटल आते हैं। थोड़ी दूर पर श्रीनगर क्लब व गवर्नमेंट आर्ट्स एम्पोरियम है। हब्बाकदल दूसरा पुल है जो शहर का सबसे व्यस्त पुल है। आगे चलने पर सरकारी दफ्तर व सचिवालय हैं।

डल झील वादी का सबसे उत्तम आभूषण है। यह श्रीनगर से पूर्व में दस वर्ग मील का क्षेत्र घेरती है। झील के स्वच्छ पानी मे झिलमिलाती पर्वतों की चोटियाँ, तैरते हुए छोटे-छोटे खेत, चारचिनार व नेहरू पार्क, हाउस-बोटों में सैर करते हुए देशी-विदेशी पर्यटक, चेहरे पर लाली लिए हुए कश्मीरी बालक व युवतियाँ एक सुन्दर वातावरण के निर्माण मे सहयोगी है। शंकराचार्य श्रीनगर के दक्षिण-पूर्व में पहाड़ी पर है जिस पर सुन्दर मन्दिर बना है। हमे बताया गया कि यह मन्दिर ईसा से २५०० वर्ष पहले सधिमान नामक शासक ने बनवाया था। इसे तख्त-सुलेमान भी कहते है। यहाँ से चारो ओर का दृश्य लुभावना है। दूर हिमशिखर, बीच मे झेलम व नजदीक ही डल झील, राज-भवन, शालीमार व निशात बाग।

जिस दिन हम शालीमार व निशात बाग गए, सौभाग्य से रविवार था, जो विशेष रौनक का दिन है। शालीमार डल के उत्तर में है। शाला का अर्थ है पर्वत और मार का सुन्दर। यह जहाँगीर की देन है, चिनारों के पत्तों से गुजरती सूर्य की किरणें, फव्वारों के जल के साथ असंख्य इन्द्रधनुष बनाती है। प्रत्येक मौसम मे खिलनेवाले फूल, हरी घास व पृष्ठभूमि मे हरे पर्वत। हमारा दिल बाग छोड़ने को नहीं कर रहा था। लगभग इस जैसा ही दृश्य निशात का है। चश्माशाही एक निर्झर है जिसका शीशे-सा निर्मल ठण्डा जल स्वास्थ्यवर्धक

'भी' है। फूलों के प्रेमियो तथा पिकनिक के लिए यह आदर्श जगह है।

श्रीनगर के बाहर हमारा सबसे बड़ा आकर्षण गुलमर्ग था, जो वहाँ से पच्चीस मील दूर है। गुलमर्ग जानेवाली सडक सुन्दर तो थी ही, परिचित भी लगी क्योंकि वह बहुत-सी आधुनिक फिल्मो के दृश्य मे आती है। पहले टनमर्ग आता है जहाँ से गुलमर्ग की चढाई तीन मील है। लोग घोड़ो पर भी जा रहे थे, परन्तु घोड़ों पर जाने से जवानी को लाज लग जाती। गुलमर्ग पहुँचते ही प्राकृतिक सौन्दर्य ने सारी थकान भुला दी। नीचे घास के मैदान, ऊपर दूर वर्फ के पहाड, पास से गुजरते रंगीले तबीयत के यात्री। सभी को प्रकृति ने जैसे अपने रंग में रँग लिया। क्या जीवन इसी तरह नहीं गुजारा जा सकता? स्वर्ग मे इससे बढ़कर क्या होगा? सर्दियों के खेलो के लिए गुलमर्ग एकमात्र जगह है। यहा होटल व डाक बंगले भी हैं। खिलनमर्ग पहुँचने मे एक घण्टा और लगा। अब हम समुद्रतल से १०,००० फीट से अधिक ऊँचाई पर थे तथा गर्वीली वर्फ हमारे पैर चूम रही थी। चाय का सामान हम साथ ले गए थे। अत. थकान मिटाकर, ऊँचाई पर जाकर वर्फ पर फिसले, लुढके व कैमरे को खुली छूट दे दी। सूर्य झुकने लगा और हमे वापस आना ही था।

सोनमर्ग एक सुन्दर वादी है जो श्रीनगर से ५१ मील उत्तर-पूर्व में है तथा ६,००० फीट ऊँची है। कहते है। यहाँ कहीं पर एक कुआँ है जिसका पानी किसी भी वस्तु को सोना बना सकता है। रास्ता सिंध नदी के साथ जाता है। सोनमर्ग बहुत अच्छा कैम्पिंग ग्राउण्ड है। इसे एक चश्मे, पास के बर्फीले मैदान के नाले व ग्लेशियरों से पानी मिलता है। इस वादी मे डॉ० नीव की सेवा-भावना की सुगंध व्यापक है जिसने यहाँ के निवासियों के लिए रोगों से लड़ाई की तथा उनका दिल जीत लिया।

हमारे अब तक के पर्यटन का केन्द्र श्रीनगर ही था परन्तु अब मंजिल पहलगाम थी अतः श्रीनगर को अलविदा कहना ही पड़ा। रास्ते मे नजदीक ही पाद्रेठन के मन्दिर व खण्डहर तथा अवन्तीपुर में शिवजी के मन्दिर हैं जो नवी सदी की देन हैं। मार्तण्ड का मन्दिर ललितादित्य ने बनवाया था। अनन्तनाग कश्मीर के प्रसिद्ध नागो में से है। नाग का अर्थ झरना या चश्मा है। भवन या मटन में श्राद्ध किये जाते हैं। यहाँ अमरनाथ के पण्डे रहते हैं। अच्छावल बाग शहजादी जहाँआरा की देन है। समीप ही कोकरनाग है जहाँ का गन्धक के पानी का झरना रोग-निवारक है।

जब २ जून का सूर्य पहाडों की ओट लेकर छिपने ही वाला था कि हमारी टोली पहलगाम पहुँची। यूँ तो प्रकृति ने सारे कश्मीर पर अपना वैभव लुटाया है, परन्तु अमरनाथ के मार्ग मे पड़नेवाले पहलगाम की शोभा तो अद्वितीय है। यहाँ ठहरने के लिए होटल व तम्बू की व्यवस्था है। ७,००० फीट

ऊँची इस घाटी को लिद्दर घाटी कहते हैं। यहाँ शेषनाग व लिद्दर नदियों का संगम-स्थान है।

पहलागम से चन्दनवाड़ी का रास्ता। हम थे, तेज व ठण्डी हवा थी और थे साथ-साथ उछल-उछलकर बहनेवाला शेषनाग नाला व पग-पग पर छितराई जाने वाली दूध-सी सफेद फुग्रार। एक ओर वर्फ से ढकी चोटियाँ चमक रही थीं और उनमें से छोटे-छोटे ग्लेशियर हम से मिलने को नीचे को रेंग रहे थे। इन्हें देखकर कभी पढ़ी हुई अंग्रेजी कविता की पंक्तियाँ याद आ गई जिनका भावार्थ कुछ इस प्रकार है—

"इन पर्वत-शिखरों की छाया मेरे अन्तर्पट पर पड़ रही है। इनकी भीषण दुर्गमता गुलाबी साँझ से रंजित है। फिर भी मेरे प्राण इनके लिए अकुलाते हैं। वे शांत व श्वेत हिम के प्यासे हैं। यह कैसी पागल ममता है ?"

इधर सूर्य सिर पर और हम चन्दनवाड़ी की वर्फ पर। उस बर्फ के नीचे से शेषनाग नदी नैसर्गिक पुल बनाकर तीव्र गति से बहती है। पहलगाम आनेवाले पर्यटक इस पुल को अवश्य देखने आते हैं। यहीं से अमरनाथ का रास्ता है जो उस समय बन्द था। सायं तक कुछ पैदल तथा कुछ मोटर पर मनबहलाव करते हुए हम होटल पहुँच गए।

रात को वर्षा हो गयी और घाटी में वर्फ भी पड़ी। अभ्यस्त न होने के कारण हम सभी को जुकाम हो गया। सुबह ही बिस्तर बँध गये, कार चल पड़ी तथा लिद्दर घाटी का मनभावन शोर पीछे रह गया। जम्मू शहर ने फिर शरण दी। दूसरे दिन कश्मीर के पहाड़ यादगार बन गए। नदियों की जगह पंजाब की नहरों ने ले ली। जैसे स्वप्न टूट गया, माथे पर हाथ रखा तो ठण्डे झरने का पानी नहीं बल्कि पसीना बह रहा था। इस यांत्रिक युग का प्राणी जो कि सदैव कृत्रिम ग्रावरण में रहता है, थोड़े समय के लिए भी यहाँ आए तो सारे सांसारिक दुख व बन्धन भूल जाता है।

बारह दिन का भ्रमण और पाँच पड़ाव

सुलतानसिंह गोदारा

सुबह होती है, शाम होती है जिन्दगी यूँ ही तमाम होती है।
बेहतर है जिन्दगी तमाम होने से पहले ही तमन्नाएँ पूरी कर ली जाएँ। कई बार तमन्नाएँ, कुछ पुरानी साधें अनायास ही पूरी हो जाती हैं। ऐसा ही कुछ हमारी उस भ्रमण-यात्रा में हुआ जो अक्टूबर में दशहरे की छुट्टियों में श्री महावीरसिंह जी के नेतृत्व में हुई।

यात्रा का प्रथम पड़ाव कल्पना-नगरी चण्डीगढ़ मे था, जहाँ हम १२ अक्टूबर को सुबह पहुँचे। चण्डीगढ़ भारत के बड़े शहरो से कई अर्थों में भिन्न लगा। यहाँ वह भीड़ नही कि दम घुटने लगे। वह माहौल नही कि यात्री अपने-आपको अजनबी महसूस करे। यद्यपि उन दिनों चण्डीगढ़ राजनीतिक हलचलों का केन्द्र था परन्तु चण्डीगढ़ की चौड़ी सड़कें, व्यवस्थित बाजार, शान्त कृत्रिम झील और सुन्दर परिवहन-व्यवस्था सभी अपने नागरिकों के प्रति वफादार थी।

चण्डीगढ भारत का एकमात्र योजनाबद्ध नगर है। फ्रांसिसी शिल्पकार कार्बूजिए नगर को जीवित प्राणी मानते थे। नगर के सिर पर सचिवालय, विधान सभा व उच्च न्यायालय स्थित है। मध्य में प्रमुख व्यावसायिक केन्द्र है। सबसे नीचे औद्योगिक केन्द्र है। नगर को तीस सैक्टरों में बाँटा गया है जो प्रत्येक आधा मील चौड़ा और पौन मील लम्बा है। प्रत्येक सैक्टर पूर्णतः आत्मनिर्भर है। शहर का प्रमुख आकर्षण सुखना झील है। इसमें सायं के समय नौका-विहार किया जा सकता है। सैक्टरों में उच्च शिक्षा के लिए विश्वविद्यालय, पोलीटेक्नीक, आर्ट्स कॉलिज, इजीनियरिंग कॉलेज, चिकित्सा संस्थान आदि हैं। सैक्टर नं० अठारह में टैगोर थियेटर के निर्माण पर नौ लाख रुपया व्यय हुआ है।

यह कैसे हो सकता था कि चण्डीगढ़ आएँ और पिंजोर बाग और हिन्दुस्तान मशीनरी टूल्स का कारखाना न देखें। जहाँ पिंजोर मुगलकालीन ऐश्वर्य की झाँकी प्रस्तुत करता है वहाँ हिन्दुस्तान मशीन टूल्स का कारखाना अपनी

ऊँची इस घाटी को लिद्दर घाटी कहते हैं। यहाँ शेषनाग व लिद्दर नदियों का संगम-स्थान है।

पहलगाम से चन्दनवाड़ी का रास्ता। हम थे, तेज व ठण्डी हवा थी और थे साथ-साथ उछल-उछलकर बहनेवाला शेषनाग नाला व पग-पग पर छितराई जाने वाली दूध-सी सफेद फुआर। एक ओर बर्फ से ढकी चोटियाँ चमक रही थी और उनमें से छोटे-छोटे ग्लेशियर हम से मिलने को नीचे को रेंग रहे थे। इन्हें देखकर कभी पढ़ी हुई अंग्रेजी कविता की पंक्तियाँ याद आ गई जिनका भावार्थ कुछ इस प्रकार है—

"इन पर्वत-शिखरों की छाया मेरे अन्तर्पट पर पड़ रही है। इनकी भीषण दुर्गमता गुलाबी साँझ से रंजित है। फिर भी मेरे प्राण इनके लिए अकुलाते हैं। वे शांत व श्वेत हिम के प्यासे हैं। यह कैसी पागल ममता है?"

इधर सूर्य सिर पर और हम चन्दनवाड़ी की बर्फ पर। उस बर्फ के नीचे से शेषनाग नदी नैसर्गिक पुल बनाकर तीव्र गति से बहती है। पहलगाम आनेवाले पर्यटक इस पुल को अवश्य देखने आते हैं। यहीं से अमरनाथ का रास्ता है जो उस समय बन्द था। सायं तक कुछ पैदल तथा कुछ मोटर पर मनबहलाव करते हुए हम होटल पहुँच गए।

रात को वर्षा हो गयी और घाटी में बर्फ भी पड़ी। अभ्यस्त न होने के कारण हम सभी को जुकाम हो गया। सुबह ही बिस्तर बँध गये, कार चल पड़ी तथा लिद्दर घाटी का मनभावन शोर पीछे रह गया। जम्मू शहर ने फिर शरण दी। दूसरे दिन कश्मीर के पहाड़ यादगार बन गए। नदियों की जगह पंजाब की नहरों ने ले ली। जैसे स्वप्न टूट गया, माथे पर हाथ रखा तो ठण्डे झरने का पानी नहीं बल्कि पसीना बह रहा था। इस यान्त्रिक युग का प्राणी जो कि सदैव कृत्रिम आवरण में रहता है, थोड़े समय के लिए भी यहाँ आए तो सारे सांसारिक दुख व बन्धन भूल जाता है।

बारह दिन का भ्रमण और पाँच पड़ाव

सुलतानसिंह गोदारा

सुबह होती है, शाम होती है जिन्दगी यूँ ही तमाम होती है। बेहतर है जिन्दगी तमाम होने से पहले ही तमन्नाएँ पूरी कर ली जाएँ। कई बार तमन्नाएँ, कुछ पुरानी साधें अनायास ही पूरी हो जाती है। ऐसा ही कुछ हमारी उस भ्रमण-यात्रा में हुआ जो अक्टूबर में दशहरे की छुट्टियों में श्री महावीरसिंह जी के नेतृत्व में हुई।

यात्रा का प्रथम पड़ाव कल्पना-नगरी चण्डीगढ़ में था, जहाँ हम १२ अक्टूबर को सुबह पहुंचे। चण्डीगढ़ भारत के बड़े शहरों से कई अर्थों में भिन्न लगा। यहाँ वह भीड़ नहीं कि दम घुटने लगे। वह माहौल नहीं कि यात्री अपने-आपको अजनबी महसूस करे। यद्यपि उन दिनों चण्डीगढ़ राजनीतिक हलचलों का केन्द्र था परन्तु चण्डीगढ़ की चौड़ी सड़कें, व्यवस्थित बाजार, शान्त कृत्रिम झील और सुन्दर परिवहन-व्यवस्था सभी अपने नागरिकों के प्रति वफादार थी।

चण्डीगढ़ भारत का एकमात्र योजनाबद्ध नगर है। फ्रांसिसी शिल्पकार कार्बूजिए नगर को जीवित प्राणी मानते थे। नगर के सिर पर सचिवालय, विधान सभा व उच्च न्यायालय स्थित हैं। मध्य में प्रमुख व्यावसायिक केन्द्र है। सबसे नीचे औद्योगिक केन्द्र है। नगर को तीस सैक्टरों में बाँटा गया है जो प्रत्येक आधा मील चौड़ा और पौन मील लम्बा है। प्रत्येक सैक्टर पूर्णतः आत्मनिर्भर है। शहर का प्रमुख आकर्षण सुखना झील है। इसमें सायं के समय नौका-विहार किया जा सकता है। सैक्टरों में उच्च शिक्षा के लिए विश्वविद्यालय, पोलीटेक्नीक, आर्ट्स कॉलेज, इंजीनियरिंग कॉलेज, चिकित्सा संस्थान आदि हैं। सैक्टर नं० अठारह में टैगोर थियेटर के निर्माण पर नौ लाख रुपयों व्यय हुआ है।

यह कैसे हो सकता था कि चण्डीगढ़ आएं और पिंजोर बाग और हिन्दुस्तान मशीनरी टूल्स का कारखाना न देखें। जहाँ पिंजोर मुगलकालीन ऐश्वर्य की झांकी प्रस्तुत करता है वहाँ हिन्दुस्तान मशीन टूल्स का कारखाना अपनी

विशालता व कुशलता से भारत के भविष्य के प्रति आश्वस्त करता हुआ प्रतीत हुआ।

१३ अक्टूबर की शाम को हम नागल जानेवाली गाड़ी में थे जो हमारी यात्रा का दूसरा पड़ाव था। 'ये नए भारत के तीर्थ हैं, इन्हें प्रणाम करो।' श्री नेहरू के ये शब्द हमारे मन में थे। अतः हम वहाँ वैज्ञानिक करिश्मों के दर्शनों की लालसा से पहुँचे थे। नागल के कारखानों की मशीनों की गति सतलज के पानी के बहाव की तरह कभी मन्द नहीं होती। प्रकृति को बाँध रखने से ही उस पर विजय नहीं पायी जा सकती। उसके साथ निरन्तर जूझना भी पड़ता है। भाखरा बाँध सन् १९६३ में पूरा हुआ तथा नागल उससे भी पहले। भाखरा बाँध को पहली बार देखकर रोमांच और दहशत पैदा हो जाती है। इसमें तेरह मंजिलों पर ऐसी तेरह गैलरियाँ हैं, जिनमें लिफ्ट द्वारा प्रवेश कर निरीक्षक व कारीगर भीतर बिखरी अनेक उपगैलरियों में फैल जाते हैं। पर्यटकों के आकर्षण के लिए बाँध के दोनों ओर साज-सज्जा का काम चल रहा था। बाँएँ किनारे पर बने एशिया के सबसे बड़े हाइड्रोइलेक्ट्रिक पावर प्लाण्ट के पाँच भीमकाय चक्के बारी-बारी से एक सेकंड में ६६ की गति में घूम रहे हैं। इनमें डेढ़ लाख हार्स पावर का प्रत्येक जेनरेटर ९०,००० किलोवाट विद्युत उत्पन्न करता है। दाएँ किनारे पर ठीक वैसा ही एक पावर पलाण्ट और बन रहा है जिसका एक जेनरेटर चालू हो चुका था और शेष चार बन रहे थे।

पहाड़ की ढलान पर ऊपर से नीचे तक मशीनें, तार, कंकरीट व पत्थर बिखरे पड़े हैं। बीच-बीच में काम में जुटे हैं वे लोग जो गवाह हैं उस सूचना के जो मुख्यद्वार पर ही लिखी हुई थी—"कृपया सावधानी से काम कीजिए और अपने घरों को सुरक्षित लौटिए। आपके परिवारों की खुशी और भविष्य आपके सुरक्षित लौटने पर ही निर्भर है।"

नागल डैम हम रात में पहुँचे। उसके आगे की सड़क से हम चाहें तो रासायनिक खाद के कारखाने तक या उसकी कॉलोनी 'नया नांगल' तक जा सकते हैं। भाखरा व नागल के बीच में नदी को झील बना दिया गया है। यहीं 'सतलुज सदन' में इसी झील के किनारे पर बने एक कमरे में बैठकर चीन के प्रधानमंत्री श्री चाऊ-एन-लाई ने श्री नेहरू से दोनों देशों की मित्रता के लिए हाथ मिलाया था। नागल बाँध पर भाखरा बाँध जैसी दहशत नहीं होती।

आनन्दपुर साहिब हम १५ अक्टूबर को सुबह बस द्वारा पहुँचे। गुरुद्वारे की प्राचीनता तथा विशालता के बारे में पूछताछ की और गुरुग्रन्थ साहिब के सम्मुख शीश झुकाया। वहाँ से नैना देवी का मन्दिर पहाड़ी पर टिका हुआ नजदीक ही दिखाई दे रहा था, पर उस तक पहुँचने की चढ़ाई ने अध्यापक बन्धुओं तथा साथी छात्रों का दम-खम तोल लिया और मन्दिर से वापस आना

तो ववाले-जान बन गया। खैर, हिमाचल प्रदेश की वस हमे वहाँ मिल गई। बस का किराया जहाँ दिल दहलानेवाला था, उससे अधिक वह रास्ता था जिससे हम करतारपुर पहुँचे। रास्ते में ही हमने विशाल गंगवाल पावर हाउस देख लिया, जो भाखरा की विजली का वितरण केन्द्र है।

दिल्ली, जो भारत का दिल है, दिल्ली जो भारत की राजधानी है, १६ अक्टूबर दोपहर को वह भी आ गई। यह विशाल ऐतिहासिक नगरी सदियों से उतार-चढाव देखती आयी है। दिल्ली पाण्डवो की राजधानी रही है। पृथ्वीराज चौहान की आन-बान की यह गवाह है। नादिरशाह और तैमूरलंग ने इसे लूटा है। मुगल सम्राटों ने इसे सँवारा है। दिल्ली बार-बार उजड़ी है, फिर बसने के लिए। राजमार्ग व जनपथ तथा अन्य मुख्य मार्गों पर दौड़ती हुई परिवहन की बसें, टैक्सी व कारें, उनसे बचता हुआ राजधानी का आम नागरिक, चाँदनी चौक व कनॉट प्लेस की भीड़ का अधिक घनत्व। ये सभी ऐसी विशेषताएँ है जो हमने दिल्ली मे आने से पहले सुन रखी थी। स्पष्ट है कि दिल्ली एक नहीं बल्कि दो शहर है। पुरानी दिल्ली जो प्राचीन इमारतों व ऐतिहासिक स्थानों का सग्रहालय है। लालकिला में दीवाने-खास व दीवाने-आम की स्थापत्य-कला दर्शनीय है। इसके अतिरिक्त जामा मस्जिद, शीशगंज गुरुद्वारा, बिड़ला मन्दिर तथा आकाश की बुलन्दी को छूती हुई कुतुबमीनार जिससे सटी हुई अशोक महान की लोहे की लाट—पुरानी दिल्ली के आकर्षण हैं। दूसरा शहर है—नई दिल्ली जिसमे भारतीयों के रूप मे अंग्रेज लोग रहते हैं जो अंग्रेजी भाषा बोलते है, अंग्रेजी वाना पहनते है, अंग्रेजों की दी हुई आजादी भोगते हैं। राष्ट्र का शासन कार्य यही से चलता है। ससद भवन, राष्ट्रपति भवन, आकाशवाणी, तीनमूर्ति, इण्डिया गेट, सुपर बाजार का तूफानी दौरा हमने एक ही दिन में कर लिया। दिल्ली मे शाति मिली तो यमुना किनारे राजघाट, शान्तिवन तथा विजयघाट के दर्शन करके।

चौथा पड़ाव डाला गया ऐतिहासिक नगरी आगरा मे। आगरा का नाम सुनते ही ताज की परछाइयाँ आँखो के आगे नाचने लगती है। देशी-विदेशी पर्यटकों का संगम स्थल आगरा। शाहजहाँ की महबूब नगरी आगरा। ताजमहल देखकर न जाने कितने विचार दर्शक के मन में उठते है! हम मे से कोई इसे मुगल स्थापत्य कला का शानदार नमूना, कोई सम्राट द्वारा अपनी बेगम मुमताज की याद मे बनाया हुआ शानदार मकबरा तथा कोई कोसता हुआ कह रहा था कि 'शहशाह ने एक हसीन ताज बनवाकर गरीबों की मुहब्बत का मज़ाक उड़ाया है।' लेकिन एक बात स्पष्ट थी कि इस प्रकार दिल पर असर करनेवाली इमारत हमने अब तक नही देखी थी। आगरा के किले के बारे में छात्रों की राय थी कि यह दिल्ली के लाल किले से आकार व सुन्दरता की दृष्टि से

अच्छा था। इसी किले में शाहजहाँ ने कैदी के रूप में अपने दिन काटे थे और इसी के एक कोने में बैठा हुआ दूर अपनी बेगम के मजार ताज को देखकर रोया करता था। आगरा में सतनामियों का एक मन्दिर दयालबाग में निर्माणाधीन है। इसके निर्माण व व्यय के बारे में अनेक प्रकार की कथाएँ प्रचलित हैं। दूसरा सारा दिन फतेहपुर सीकरी के लिए था। फतेहपुर सीकरी के साथ महान सम्राट अकबर का नाम जुड़ा है। इसमें रानियों के महल—विशेषकर पंचमहल, नवरत्नों के महल, विशाल प्रांगण तथा दरबार, चिश्ती की मजार दर्शनीय हैं। बुलंद दरवाजा वास्तव में बुलंद था। सीकरी के खण्डहर न जाने कितना इतिहास अपने में समेटे हैं।

२० अक्तूबर की शाम को जयपुर पहुँचे, जो हमारी यात्रा का अन्तिम व पाँचवाँ पड़ाव था। गुलाबी नगरी जयपुर! राजस्थान की राजधानी! जयपुर के सुन्दर बाजार, चौड़ी सड़कें तथा ऐतिहासिक स्थान यात्रा के प्रारम्भ से ही हमारी बातचीत का विषय रहे थे। जयपुर ने हमें निराश नहीं किया। सवाई राजा जयसिंह स्वयं एक कुशल इंजीनियर, ज्योतिषी तथा प्रशासक थे। जंतर-मंतर में अनेक प्रकार के ज्योतिष-सम्बन्धी उपकरण थे जिसमें से कुछ के नाम राम यन्त्र, कृष्ण यन्त्र, चन्द्र यन्त्र आदि थे। राजमहलों में से कुछ में संग्रहालय है जिनमें प्राचीन हथियार, कला के नमूने तथा मूर्तियाँ एकत्रित है। हवामहल, विधानसभा भवन, अजायबघर, चिड़ियाघर, राम-निवास बाग आदि शहर के अन्य दर्शनीय स्थल हैं। आमेर का किला जो जयपुर से थोड़ी दूर पहाड़ी पर है, प्राचीन समय में राजधानी थी। किले में राजा-रानियों के महल—विशेषकर शीश महल व दरबार काफी सुन्दर हैं। जयपुर से थोड़ी दूर पर गल्ताजी एक पवित्र स्थान है।

२४ अक्तूबर की दोपहर पहुँच गए मंजिल पर। भ्रमण-यात्रा पूरी हो गई। प्रश्न किए जा सकते है कि इस भ्रमण में हमने क्या देखा, क्या सीखा? ऐतिहासिक स्थान, आधुनिक शहर, वैज्ञानिक स्थल, विशाल बाँध। ये भारत के आधुनिक तीर्थ हैं जो हमें विज्ञान, इंजीनियरिंग, विद्युत का उत्पादन व वितरण, शिक्षा के आधुनिक व उपयोगी साधन तथा चिकित्सा सम्बन्धी संस्थान के बारे में जानकारी देते हैं।

अतः यात्रा अपने-आप चाहे वह किसी भी उद्देश्य से की गई हो बहुत उपयोगी हैं। विभिन्न बोली बोलनेवालों से सम्पर्क हुआ। परस्पर आत्मीयता बढ़ी। पहाड़, नदियाँ, मैदान, बाँध, वन, नगर सभी ने हमें आकर्षित किया। प्रत्येक ने कुछ न कुछ ज्ञान-वृद्धि की। अतः जिन उद्देश्यों को लेकर हमने भ्रमण का आयोजन किया था वे काफी सीमा तक पूरे हो गए।

बदरी केदार से मसूरी

राजेन्द्रप्रसाद सिंह डांगी

कल-कल करती हुई प्रवाहित पवित्र नदियाँ, गगन को स्पर्श करती हुई पर्वत शिखाएँ, पाताल को चीरती हुई गहरी घाटियाँ, पैदल चलते हुए अनेक राहगीर, सर्वत्र हरी मखमली सेज—देखते ही मन-मयूर नाच उठता है, जी बाँसों उछल पड़ता है, इच्छा होती है कि नेत्रों को उन अलौकिक दृश्यों में ही सदा के लिए जमा दे ताकि वे तृप्त रह सके। सबके मन मे एक नया उत्साह, नई उमंग थी, ऐसे प्राकृतिक दृश्यों के आनन्द-लाभ होने की।

२४ घंटो की लगातार रेल-यात्रा के बाद शाहपुरा (भीलवाड़ा) से निकला २२ स्काउटरो, गाइडरों का दल १० जून को प्रातः भारत की राजधानी दिल्ली पहुँचा, जहाँ के सभी दर्शनीय स्थान लालकिला, कुतुबमीनार, विरला मन्दिर, नेताओं की समाधियाँ, इंडियागेट, तीनमूर्ति भवन, अजायबघर आदि देखकर दूसरे दिन प्रातः मसूरी एक्सप्रेस से ऋषिकेश पहुँचे। रेलवे स्टेशन पर ही महाराज भरत मन्दिर इंटर कॉलेज के एक शिक्षक ने हमारा स्वागत किया और शहर के मध्य स्थित कॉलेज के प्राचीन भवन में आवास हेतु ले गये। द्विदिवसीय लम्बी यात्रा के बाद वहाँ स्वर्गाश्रम और गीताभवन के दर्शन तथा गंगा के स्नान बड़े सुखद प्रतीत हुए। समीप ही 'लक्ष्मण भूला' देखकर 'पायोनियरिंग प्रोजेक्ट्स' की स्मृति हो आयी। संध्या को हमने केदारनाथ जाने हेतु सोनप्रयाग के टिकट खरीदे। पर्यटन विकास सहकारी संघ ने टिकट देने में बड़ी मदद की और सोनप्रयाग व बद्रीनाथ के स्टेशन प्रभारी के नाम हमें पत्र दिये, जिससे हमे वहाँ टिकट आसानी से अविलम्ब मिल सके। उनका सहयोग सराहनीय है।

जैसे स्वर्ग के द्वार खुल रहे हो, ऋषिकेश से प्रथम बसों का द्वार प्रातः साढ़े छह बजे खुलता है, उसका लाभ उठाया गया। दिन-भर बस की यात्रा। सड़कें तंग मार्ग टेढ़ा-मेढा चक्करदार। स्काउटर्स व गाइडर्स इस मार्ग की कठिनाई को सहन न कर सकें, इससे कुछ दूरी तक बहुतों की तबीयत खराब

हो गई। आगे चलते-चलते अभ्यस्त हो गये। मार्ग मे प्राकृतिक छटा का अवलोकन होता रहा। ऊँचे-ऊँचे पर्वतों को काटकर सर्पाकार मार्ग देखते ही बनता था। अठावन मील की यात्रा कर हम देवप्रयाग पहुँचे। यह शुभ्र-सलिला भागीरथी और अलकनन्दा का रमणीक संगम-स्थल है। आगे हम नदप्रयाग होते हुए रुद्रप्रयाग पहुंचे। तीसरे दिन शाम को पांच बजे बजे हम सोनप्रयाग पहुँचे जहाँ पर बसो का मार्ग समाप्त हो जाता है। रुद्रप्रयाग से केदारनाथ और बद्रीनाथ के लिए मार्ग अलग-अलग जाते है। सोनप्रयाग से साढे ग्यारह मील पैदल चलकर ही केदारनाथ के दर्शन कर पाते है। बस-मार्ग आगे-से-आगे बनाकर स्वर्ग में पहुँचने की कठिनता को समाप्त करने का राज्य सरकार का प्रयास जारी है। उसी समय हम पैदल रवाना हुए।

अपूर्व जोश और हिम्मत, लालसा केदारनाथ के दर्शनों की, इच्छा चाँदी से पहाडों को देखने की। दो मील की चढाई चढ़ने के बाद हम रात्रि को सात बजे गौरीकुण्ड पहुंचे। यहाँ एक ओर अलकनन्दा बहुत वेग से बहती है जिसके जल मे हाथ देने से ऐंठन होने लगती है। इससे ऊपर की ओर दो जलकुण्ड हैं। एक पीला है किन्तु विशेष गर्म नही, परन्तु दूसरा गर्म जल का है। ईश्वर की कृपा है कि ६५०० फीट की ऊँचाईवाले ऐसे ठण्डे स्थान पर इस प्रकार का गर्म औटता हुआ जल मिलता है, जिसमे नहाते ही यात्रियो की सारी थकान दूर हो जाती है। यहाँ के निवासी बडे भले लगे, निवास व भोजन व्यवस्था उत्तम रही। यहाँ भोजनालय है, छोटा-सा बाजार है, एक धर्मशाला भी है, जिसमे साधु-सन्त ठहरते है। रात्रि-विश्राम यही किया।

दूसरे दिन प्रात. ही रवाना हुए, वह दुर्गम तथा सीधी चढाई चढने के लिए। विकट मार्ग, सँकरे व हिलते पुल, मगर 'जै केदारनाथ' का उच्चारण करते-करते छह मील का मार्ग तै कर रामबाड़ा पहुँचे। यह स्थान बहुत ठंडा है। समीप ही एक जल-प्रपात है। कुछ विश्राम के बाद फिर चल पड़े, धर्म व प्रकृति के प्यासे। नंगे पहाडो को, जिन पर बर्फ चाँदी-सी मढ़ी हुई, देखते-देखते मन नही भरता था। साढे तीन मील की भयंकर चढाई के बाद निर्दिष्ट स्थान पर जा पहुँचे। हममे से कुछ ने मंदाकिनी मे स्नान किया। मौसम बड़ा ठंडा था, कँपकँपी छूटती थी। समुद्रतल से ११७८५ फुट ऊँचा केदारनाथ का मदिर मदाकिनी की घाटी के सिरे पर स्थित है। बडा ही शानदार भवन है। अदृश्य शिव का यह मन्दिर है। भगवान् सदाशिव के बारह ज्योतिर्लिंगों में से एक है। कहा जाता है कि पाण्डवों ने इसी स्थान पर देह-त्याग किया था। इसी स्थान से थोड़ी दूर पर हिमनदी बहती है जो मंदाकिनी का उद्गम-स्थल है। यात्री हिमनदी पर से आते-जाते थे। प्रति वर्ष मई के आरम्भ मे मन्दिर खुलता है और दीपावली के बाद बद हो जाता है। केदारनाथ धाम बड़ा

रमणीक स्थान है। चारो ओर प्रकृति निखर रही है। यात्रियों के मन को अनायास ही मोह लेती है। पूजन के लिए यहां पर सवा रुपये की थाली मिलती है। भगवान् के खूब शुद्ध घी की मालिश की जाती है और स्पर्श किया जाता है। दिन-भर में मनो घी भगवान् को चढ़ाया जाता है। यहां पर अखण्ड ज्योति प्रज्वलित है।

पूजन करके हम रवाना हो गये, वापस दूसरे धाम के लिए। मौसम अति शीत होने से रात्रि-विश्राम यहां न कर रात्रि को गौरीकुण्ड में आकर किया। एक ही दिन में तेरह मील की पैदल यात्रा, थकान सिर चढ़ आयी। मगर तप्त कुण्ड के गर्म पानी में पैर धोने से कुछ राहत मिली।

चौदह जून को प्रातः हम सोनप्रयाग आकर दिन के ग्यारह बजे सवार हुए बसों में, दूसरे पावन धाम बद्रीविशाल के दर्शनों की इच्छा के लिए। एकदम बोल उठे—'जै केदार, जै बद्रीविशाल'। पीपलकोटी होते हुए हम शाम को जोशीमठ पहुँचे। यहां बिरला विश्राम-गृह बहुत अच्छा स्थान है। ठहरने की पूर्ण सुविधा है। जगद्गुरु शंकराचार्य के चारो मठो में से एक मठ यही पर है। शीत-काल में श्री बद्रीनाथ की चलमूर्ति इसी मन्दिर में स्थापित कर छः माह तक उसकी पूजा होती है। छोटी-सी पहाड़ी बस्ती है। अच्छा भोजन प्राप्त हो जाता है। दूसरे दिन प्रातः रवाना हुए—बद्रीनाथ के लिए। नियत समय पर गाड़ियों की रवानगी का समय है। मिलिटरी ही इस सड़क की देखभाल करती है। जोशीमठ से दो मील पर विष्णुप्रयाग है। यह इस क्षेत्र का पांचवां और अंतिम प्रयाग (संगम) है। यहां के दायी ओर के पर्वत को नर और बायी ओर के पर्वत को नारायण कहते है। धौली गंगा का प्रवाह बड़ा तेज है। मार्ग में उतार-चढ़ाव का तो कहना ही क्या, जैसे अब गिरे गड्ढे में! बहुत ही धैर्य से मोटर चलाने की आवश्यकता है। हम प्रातः नौ बजे बद्रीनाथ जा पहुँचे। १०,५०० फीट ऊँचे बर्फीले पर्वतो ने हमारा स्वागत किया। बद्रीनाथ पर्वतो की सबसे ऊँची चोटी २३,२०० फीट है। यहां पर काफी खुला मैदान है, जिसके एक ओर अलकनन्दा बहती है। बद्रीनाथ से उत्तर की ओर आठ मील की दूरी पर अलकनन्दा के मोड़ के साथ-साथ माना तक सड़क जाती है—जहां से चीन की सीमा आरम्भ हो जाती है।

बद्रीनाथ में तीन मुख्य स्थान हैं। बद्रीनाथ का मन्दिर, गर्म पानी का सोता और ब्रह्म कपाली का चबूतरा। तप्तकुंड में स्नान के बाद बद्रीविशाल के दर्शन किये, प्रसाद चढ़ाया। प्रसाद में चने की दाल मुख्य है। शाम को आरती देखी, लगभग आधा घंटे तक बड़ी लय के साथ आरती हुई। आनन्द ही आनन्द। जो कुछ भेंट चढ़ावा आता है वह सरकार को ही मिलता है। रात्रि एक धर्मशाला में व्यतीत की। प्रातः पुन. तप्तकुंड में स्नान करके चल दिए

बसों में। दिनभर की यात्रा के बाद शाम को श्रीनगर पहुँचे। यहाँ पहुँचते-पहुँचते तो इतनी गर्मी होने लगी कि शरीर पर एक कपड़ा भी अच्छा नहीं लगता था। बस स्टैण्ड के पास से ही एक गली जाती है, उसमें कुछ दूर आगे चलकर शिवजी का बहुत सुन्दर मन्दिर है। इस मन्दिर से एक मील की दूरी पर अलकनन्दा बहती है। संध्या को इसके पवित्र जल में स्नान कर थकान दूर की।

शनिवार को प्रातः श्रीनगर से रवाना होकर लक्ष्मण झूला होते हुए दिन के ग्यारह बजे ऋषिकेश पहुँचे। गंगा में स्नान किया। अलकनन्दा १२२ मील के मार्ग को तै करती हुई देवप्रयाग में भागीरथी में मिल जाती है। दोनों का नाम मिलकर यहाँ से गंगा हो जाता है। गंगा मैदान में पहुँचने से पहले ४७ मील का मार्ग ऋषिकेश तक तै करती है। बद्री और केदार की लम्बी यात्रा के बाद यहाँ विश्राम करना अत्यन्त सुखकर प्रतीत हुआ। दूसरे दिन प्रातः हम ट्रेन द्वारा हरिद्वार गये। स्टेशन के बाहर ही धर्मशाला में सामान रखकर दो-दो रुपयों में तांगा करके निकले, वहाँ के दर्शनीय स्थान देखने। कनखल-तीन मील दूर, जहाँ कि दक्ष प्रजापति ने प्रसिद्ध यज्ञ किया था और भगवान शंकर की अर्द्धांगिनी सतीजी ने अपने पिताजी के अभद्र व्यवहार के कारण अपने-आपको योगाग्नि द्वारा भस्म कर दिया था। भीमगोडा, परमार्थ निकेतन, गीताभवन, सप्तऋषि मंदिर आदि के दर्शन कर शाम को हर की पैड़ी पर स्नान करके गंगा मैया की आरती का आनन्द प्राप्त किया। सैकड़ों दीपशिखाओं वाला दीवट ताप से इतना गर्म हो जाता था कि पुजारी को बीच-बीच में उसके नीचे के भाग को पानी में डुबोकर शीतल करना पड़ता था। यह दृश्य भी देखने काबिल होता है।

प्रातः ही हरिद्वार से रवाना होकर हम देहरादून पहुँचे। वहाँ अग्रवाल धर्मशाला में हमारे ठहरने की अच्छी व्यवस्था थी। आठ मील दूर सहस्रधारा रमणीक स्थल है, जहाँ स्नान कर आनन्द किया। एक ही पहाड़ी से चारों ओर अनेक धाराएँ बहना देखकर दाँतों तले अंगुली दबानी पड़ी। अपराह्न में उत्तर प्रदेश राज्य भारत स्काउट्स व गाइड्स के उपप्रधान श्री नरेन्द्र-कुमार जैन से नरेन्द्र एण्ड कम्पनी (दून उद्योग) के कार्यालय में मिले। उन्होंने हमारा भावभीना स्वागत किया। दूसरे दिन प्रातः बस द्वारा भूलभुलैया मार्ग से ७,००० फुट की ऊँचाई पर मसूरी पहुँचे। वहाँ सनातन धर्म सभा में हमारे आवास की उत्तम व्यवस्था थी। मसूरी में हम चार दिन ठहरे। केम्प्टी फाल, गनहिल, लाल टीबा और म्यूनिसिपल पार्क देखे। विद्युत-संचालित ट्रॉली में बैठकर वायुयान का-सा आनन्द लिया। लाल टीबा सबसे ऊँची चोटी है जहाँ दूरबीन से एवरेस्ट चोटी देखी जाती है। माल रोड, लैन्ढौर, कुलड़ी और

लाइब्रेरी मार्केट में शाम को अनोखी चहल-पहल रहती है जहाँ नेत्रानन्द ही सर्वोपरि है।

शुक्रवार को वहाँ से रवाना होकर दूसरे दिन वापस दिल्ली आ पहुँचे। स्टेशन पर श्री बृजलाल, रोवर लीडर हमें लिवाने आये। हुमांयू के मकबरे के पास दिल्ली राज्य भारत स्काउट व गाइड के स्थायी शिविर केन्द्र पर हमारे ठहरने की व्यवस्था थी। वहाँ इतने अधिक पानी की उत्तम व्यवस्था थी कि हम खूब नहा-धो सके। दिन को नेशनल हैडक्वार्टर्स भवन देखने गये। वहाँ श्री सुशील के० दास, नेशनल सेक्रेटरी व श्रीमती स्नेह पटवर्धन, संयुक्त नेशनल सेक्रेटरी ने हमारा स्वागत किया। श्री दास ने हम सबों को विदेशी बैज व वोगल देकर हमारा सम्मान किया। दूसरे दिन हम अपने नगर शाहपुरा आ पहुँचे।

हमारी यात्रा तूफानी थी। इन थोड़े से क्षणों में प्रकृति का जो आनन्द मिला, उसकी अमिट छाप रहेगी। जो कुछ देखा, उससे आँखों को तृप्ति और मन को शान्ति मिली। उन पूर्वजों की याद रह-रहकर आ जाती थी, जिन्होंने अतीतकाल में बिना किसी यातायात के साधनों के केवल लाठी के सहारे खतरे की पगडंडियों से होकर इस दुर्गम पथ की यात्रा की है। उनके मन कितने पवित्र और भाव विशाल रहे होंगे। सचमुच उन्होंने सोचा होगा कि इसी जीवन में वे महाराजा युधिष्ठिर की तरह सशरीर स्वर्गारोहण कर रहे हैं। कहा करते थे कि इस पर्वतीय अंचल का एक विशेष पक्षी होता है, जिसकी 'टुलक'-'टुलक' शब्द से मिलती-जुलती आवाज़ है, मानो वह पक्षी लक्ष्य की ओर बढ़नेवाले थके-हारे पथिकों को निरन्तर अग्रसरित होते रहने की प्रेरणा देता आ रहा है।

भारत के कोने-कोने से एक ही भावना से अनुप्रेरित होकर हजारों नर-नारी पर्वत प्रदेश के इस अंचल में एकत्रित होते हैं, उनकी वेश-भूषा, भाषा, रहन-सहन आदि भिन्न-भिन्न होते हुए भी ऐसा प्रतीत होता है कि वे एक ही सूत्र में बंधे हुए हैं—ऐसा बन्धन जो हमें सदियों से बाँधे हुए है, जो आधुनिक सभ्यता के आक्रमण के बावजूद भी अपरिवर्तनशील है। देश में 'अनेकता में एकता' का चित्र यही देखने को मिलता है।

अंत: में भारतीय संस्कृति और एकता को अक्षुण्ण रखने के लिए जिन महापुरुषों ने तीर्थयात्रा की परम्परा को चलाया, अपेक्षित साधनों के अभाव में इन दुर्गम स्थलों में मन्दिर-मठों का निर्माण कराया, जो अनादिकाल से जन-जीवन के आकर्षण के केन्द्र रहे हैं, उनके अदम्य साहस, कर्मठ व्यक्तित्व और दूरदर्शित विवेक पर अनायास ही चकित, मुग्ध और स्तब्ध रह जाना पड़ता है। श्रद्धा से हमारा मस्तक उनके चरणों में अवनत हो जाता है।

राजस्थान स्टेट भारत स्काउट्स व गाइड्स, स्थानीय एसोसिएशन, शाहपुरा द्वारा आयोजित यह बद्रीनाथ-मसूरी यात्रा शाहपुरा से ९ जून को शुरू

हुई। यात्रा में २२ स्काउटर, गाइडर थे। दल का नेतृत्व चेयरमैन श्री भंवरलाल अग्रवाल ने श्री राजेन्द्र प्रसादसिंह टोंगी व श्रीमती शान्ता वैष्णव की मदद से किया। इस यात्रा में स्काउटरों, गाइडरों का वर्षभर के कार्य पर चयन किया गया था। स्थानीय एसोसिएशन द्वारा समस्त रेल-किराये की आर्थिक मदद उन्हें दी गई थी। यह इस एसोसिएशन की तीसरी सफल यात्रा है।

जीवन-यात्रा का कोलाज

□

रमेश गर्ग

मातृभूमि की यात्रा मेरे जीवन की कठोरतम घड़ियों में से कही जा सकती है। यह वही जगह है जहाँ मैं बचपन के अबोध क्षणों में और उज्ज्वल भविष्य की आशा में अपने दिन बिता चुका हूँ। बहुत कुछ प्रगति दुनिया ने की होगी, जमीन का आदमी अब चन्द्रमा पर पहुँच गया होगा, पर मेरी मातृभूमि पर लोगों की स्थिति ठीक इससे विपरीत है, वहाँ जाकर सगे-सम्बन्धियों, अड़ोस-पड़ोस मित्र-रिश्तेदारों के मुरझाये चेहरे, आर्थिक कठिनाइयाँ, अन्धविश्वास में उलझी साँसें, निम्न स्तर का जीवन, लूट-खसोट और बचपन में मेरे हृदय पर अंकित चित्र का विपरीत रूप ऐसे उपस्थित होता है कि मुझे असह्य वेदना होती है। वे लोग वहाँ बीमारियों में पल रहे हैं। उन्हें आदर्श जीवन की या यूँ कहिए जीवन में सफलता की, चैन से रहने की या सुख से जीवन बिताने की कोई जानकारी नहीं है। वे मुझे भी वहाँ एक-दो दिन में ही इतना अधिक व्यथित कर देते हैं कि वहाँ से लौटने के बाद कितने ही दिन तो स्वस्थ होने में लग जाते हैं।

दिल्ली देखकर लगता है कि यहाँ की प्रगतिशील मानव की दौड़ और गतिविधियों ने मुझे झकझोर दिया है, मन मसोसकर रह गया हूँ। दुनिया बहुत तीव्र गति से उन्नति पर है और मैं बहुत तीव्र गति से अवनति की तरफ। यहाँ गाड़ी, घोड़े, मोटर, रेल, पैदल दौड़नेवालों की ऐसी तीव्र गति है कि जीवन दुविधा में लगता है। पैसे की प्राप्ति ही आज के इस युग में यहाँ काफी जोरों पर है। इसके पीछे कुछ लूट-खसोट भी ये करते हैं। एशिया-७२ देखने गया। अभी-अभी जो सांत्वना हुई थी वह यहाँ की मानवीय प्रगति को देखकर फिर उद्विग्न हो गई है। मुझमें सही शब्दों में मानव की इस प्रगति ने हीन भावनाओं को पैदा कर दिया है। दुनिया बहुत बढ़ गई है, बढ़ रही है, कुछ तुमने किया नहीं, करोगे या नहीं? जयपुर हाउस में नई पेंटिंग्स का कलेक्शन, रवीन्द्र भवन में साहित्य के बढ़ते चरण, त्रिवेणी कला संगम का रंगमंचीय उत्थान, टाइम्स ऑफ

इंडिया प्रेस में विश्व का दौड़ता हुआ घटनाचक्र, अन्तर्राष्ट्रीय संस्था यूनेस्को बिल्डिंग से प्रगति की उद्बोधनात्मक गूंज सुनकर, देखकर मैं अपने-आपको कोसता रहा—कुछ नही किया जिन्दगी यूं ही गुजर गई। दिल्ली मे कुछ नवयुवकों का भद्दा व्यवहार, जुआ खेलने की क्रिया, आती-जाती स्त्रियों को छेड़ने की मनोवृत्ति, मारने-कूटने की प्रवृत्ति कुछ अच्छी नही लगी, लगा दुनिया बढ़ रही है, पर गलत दिशा में।

विधान सभा के चुनाव कराने मीणों की बस्ती दातलाकुंड में आकर हमें जंगल मे डेरे डालने पडे। किसी भी प्रकार की खरीद-बिक्री की वस्तु यहाँ उपलब्ध नही हो सकती। चुनाव के लिए अस्थायी ढाँचा बनाना पडा। हर मीणे के पास लटकती कटार है। निरक्षर व्यक्तियों से बातचीत करते समय केवल 'हाओ' का उत्तर मिलता है। न पीने को चाय, न दूध। न खाने को चने, न पीने को पानी। मकानों की बनावट बाँस की खपच्चियों से कोई मुश्किल से तीन-चार फुट की ऊँचाई लिए हुए जिनमे झुककर घुसना और झुककर निकलना आदिमयुग की तसवीर आज भी बीसवीं सदी मे साक्षात् उपस्थित है। सुना था एक बीड़ी पर चाहो जो समर्पण करने को तैयार है और अड़ जाय तो एक मिनट में गरदन साफ। रात को सोते समय हमारे साथ मीणा परिवार के अन्य सदस्य सोये हुए थे। रात देर तक कुछ औरतें हँसी-ठट्ठा करती रही, हमारे सोने का समय आया तो वे चट्टी पीसने बैठ गई। दूसरे दिन कुण्ड पर नहाने गए तो एक मीणा नवयुवती निर्वसन स्नान कर रही थी। मुझे आदिमयुग की सत्यता पर फिर से विचार करना पड़ा।

आदिमयुग की यह तसवीर एशिया-७२ की वह तसवीर, मातृभूमि की कुछ स्मृतियाँ मेरे मानस-पटल पर फिल्म की तरह बनती-मिटती हैं। स्वतन्त्रता के पच्चीस वर्ष मेरे जीवन की झाँकी मे प्रकट होते हैं, सिमटते है। संसार की यात्रा मेरे लिए अनबूझ पहेली है।

यह मेरी मातृभूमि है। घर के आँगन मे पाँव रखा, बड़े भाई का ढोंग देखकर इतना दुःख हुआ कि केवल साँस नही निकली, बाकी कुछ नही बचा। वे अर्धनग्न शरीर जर्जर पिंजर में पितृात्मा को बुलाने का ढोंग करके अपनी पत्नी तथा छोटे-छोटे बच्चों को भ्रम में डाले हुए हैं। स्वयं की जिन्दगी को तो अज्ञानतावश पतित कर ही चुके है, आनेवाली पीढ़ी के साथ भी अत्याचार कर रहे हैं। उनके सात-आठ बच्चे होंगे। पहली लड़की की शादी के लिए एक पैसा पास नही है। बीड़ियाँ पी-पीकर और रात-भर जग-जगकर निकम्मे बैठने के व्यसन से मजबूर वे एक पैसा कमाते नहीं हैं। दिन में उनके पाँच-सात बार घुटन और बेहोशी की शिकायत होती है। बीस दिन बाद लड़की की शादी है, तब तक एक सौ पचास बार बेहोशी का झटका उनको लगेगा। मेरे जाकर

बैठने के बाद भाभी मुझसे पूछती हैं, "उदास कैसे हो ? तबीयत तो ठीक है ?" मैं निरुत्तर रहता हूँ।

मि० स० की रुचि पैसा जोड़ने में, लोगों के घर में ब्याह-शादी कराने में, स्वयं को सेठ और सारी दुनिया को भिखमंगे कहने में आप आदत से मजबूर हैं। होने को मामूली क्लर्क हैं पर अपने-आपको पृथ्वी पर विशिष्टतम व्यक्तियों में से एक समझते हैं क्योंकि चार-पांच हजार रुपये आधी रोटी खाकर ब्याज आदि से दूसरों की आधी रोटी छीनकर इकट्ठे कर लिए हैं। हमारे घर का चक्कर इसलिए लगाते हैं कि भाई इनको यह कहे कि कुछ सहायता करो और फिर मि० स० उन्हें जलील करें। एक पैसे की सहायता तो करने का प्रश्न उठता ही नहीं। वे तो अपने पैसे के बल पर अपनी सर्वोच्चता सिद्ध करने का मौका ढूंढते हैं।

मि० क० अपने जीवन का तो सभी अस्तित्व भुला चुके, अब अपने बच्चे के योग्य होने की इन्तजार में है। बच्चियाँ पागल-सी पैदा हुई हैं। पत्नी को असाध्य रोग है। बच्चे के योग्य होने में अभी दो-तीन वर्ष लगेंगे, तब तक पत्नी को बीमारी पर रोक लगाने की सलाह दिये हुए है।

यहाँ मातृभूमि की यात्रा में इसके बाद मिलनेवाले मि० म० हैं। विगत जीवन में पहलवानी करते थे। इनका रोब-दाब देखकर राह चलता आदमी भय खाता था। अकेले लकड़ी चलाकर सैकड़ों आदमियों को धराशायी कर देते। इन्हें मैं अपनी आँखों से देख चुका था। शादी के बाद आठ बच्चों के जन्म ने एक तो उन्हें हाथ-ठेला पकड़ा दिया। शरीर सूखकर ठूंठ हो चुका है। मुझे मिलते ही शुभ समाचार सुना रहे हैं—पिछले बुधवार को लड़की हुई है। मैं फिर अपनी बुद्धि में उलझकर गुम हो जाता हूँ और उनके द्वारा अपनी पूछी गई कुशलक्षेम का उत्तर नहीं दे पाता।

एशिया-७२ देखकर आगरा जाते समय दिल्ली में रिक्शावाले की दुष्प्रवृत्ति कुछ अच्छी नहीं लगी कि फतेहपुरी से पुरानी दिल्ली स्टेशन छोड़कर पाँच रुपये मांग लिये। हमारी जानकारी में दिल्ली से आगरा का ३-४ घंटे का मार्ग जो था यह दस घण्टे बाद पूरा हुआ। दोपहर दिल्ली से डेढ़ बजे रवाना होनेवाले हम रात ग्यारह बजे तक पत्नी और बच्चे एक ऐसी रेलगाड़ी में सफर करते रहे थे जिसके डिब्बे की एक भी खिड़की साबुत नहीं थी। मार्ग में पड़नेवाले किसी रेलवे स्टेशन पर किसी भी प्रकार की खाने-पीने की सामग्री उपलब्ध नहीं हो सकती थी। रोशनी का बल्ब फ्यूज था। यात्रियों में इने-गिने आदमी—कुछ हिप्पी, कुछ फौजी, दो-एक भिखमंगे हमारे सहयात्री थे। हमारी ट्रेन आगरा कैंट पर ही समाप्त हो गई। हम यहाँ 'ताज' को गुलाब के पुष्पों में दो प्रेमियों की सजी हुई सेज में शयनावस्था में देखने आये थे पर सर्दी की रात स्टेशन

के बाहर, किसी भी सुव्यवस्थित होटल का प्रभाव, शीत हवा के फफकारे में पत्नी व बच्चे के साथ हमारी यात्रा—फिर एक होटल का दरवाजा बड़ी मुश्किल से खुलवाकर अपरिचित जगह का भय—हमें ऐसे समय से गुजार रहा था कि ताज देखने से पहले ही हमारे पति-पत्नी के मकबरे खुदवाये जा रहे हैं जो यहाँ आशय पूरा होने से पहले ही दफना दिये जायेंगे। मौत की इस सुमधुर सेज के लिए तीन-चार घंटे का विश्राम लेने में हमें होटल के चौदह रुपये अपनी अल्प-अवशेष राशि के चुकाने पड़े। फिर जाकर आगरे का किला व ताजमहल देखा। किले की भव्यता और 'ताज' की अनुपमता ने मोहित कर दिया, पर आगरे की गन्दगी, वर्षों से साफ नहीं किया गया। कूडा-कचरा, तंग रास्ते पर बहती अपार जनसंख्या और ताजमहल से जुड़ी हुई मक्खियों से भिनभिनाती आटे की लोय पर पड़ती हुई हमारी निगाहें शाहजहाँ और मुमताज के प्रेम-प्रतीक 'ताज' के निर्माण तथा झूठी विकृत भोंडी तस्वीर जुटाती रही।

चुनाव कराने के लिए तीसरे स्टेशन 'पहूनी' पर पहुँचना था कि लगा फिर एक बार राम के युग में आ गया हूँ। रात को खाना खाने के बाद सोना चाहता था कि 'माधव'—सोलह साल का एक लड़का हमारे बीच आ गया मालूम हुआ। दस वर्ष हुए उसका विवाह हो गया था। उसे एक शब्द भी लिखना-पढ़ना नहीं आता। उसने 'पहूनी' के अतिरिक्त कुछ नहीं देखा। कभी रेल नहीं देखी। उससे पूछा—कभी ससुराल गया होगा, तो उत्तर था देखो बाबूजी! जब तक मेरे माता-पिता जिन्दा हैं मुझे ससुराल जाने की क्या आवश्यकता? मनुष्य का कर्तव्य है जब तक उसके माता-पिता जिन्दा रहें केवल उनकी आज्ञा का पालन करे, अपनी मनमानी करने को बहुत जिन्दगी पड़ी है। हमने कुछ मजाक करनी चाही पर उसने यह कहकर 'कि यह सभ्य मनुष्य का काम नहीं है, बुद्धिमानी यही है कि कोई अपने माता-पिता की सेवा कैसे करता है, बाकी पढ़ाई-लिखाई सब व्यर्थ है। हमने पूछा, तू 'पढ़ा-लिखा क्यों नहीं?' उसका उत्तर था 'दसवीं कक्षा के पढ़े-लिखे लड़कों से मैं ज्यादा बुद्धि रखता हूँ और आपसे भी ज्यादा अपने माता-पिता की आज्ञाओं का पालन करता हूँ, उनकी सेवा करता हूँ और अपने जीवन को सफल समझता हूँ।'

मैं दिल्ली की गगनचुम्बी इमारत पर से गिरा हुआ एशिया-७२ के रूसी पवेलियन के बाहर स्थित खड़े हुए विशाल राकेट से टकराया और उसे चूर-चूर होते देखता रहा।

आज से दस-बीस दिन पहले मातृभूमि गया था तो बड़े भाई की दयनीय दशा देखकर दुखित हुआ था। उसकी ऐसी स्थिति थी कि बीस दिन बाद लड़की की शादी है, जेब में एक पैसा नहीं है। क्या किया जाय? रहने का मकान बेचकर पैसा जुटाने की वह बात कर रहा था, मुझे बड़ी झुंझलाहट

हुई थी कि जब सुबह-शाम के खाने का आटा नहीं है तो अभी विवाह करने की क्या आवश्यकता समझी जा रही है। जब कोई साधन पैसा जुटाने का नहीं है तो आखिर होगा क्या ? मैंने जैसे-तैसे सौ रुपये अपने पास से यह कहकर भिजवा दिये थे कि इसका अनाज खरीद लेना। अब मैं शादी मे पहुँच गया हूँ। पैसे मेरे पास नहीं हैं पर इतना जरूर है कि कोई अड़चन आयी तो कहूँगा अभी तो उधार लेकर काम चलाओ, मैं फिर दे दूँगा। पर यहाँ देखता हूँ घर भर के लोग इकट्ठे हैं, दुनिया भर का सामान इकट्ठा किया गया है। मनो दही-दूध आ रहा है, ५०-१०० आदमी हर समय भोजन कर रहे हैं। इतने सारे रिश्ते-दार इकट्ठे हो गये हैं जबकि खिलाने का कोई साधन नहीं है। चार-पाँच मिठाइयाँ बन रही हैं। इस सबमें हजारों रुपये के खर्चे के बावजूद आवश्यक सामग्री का ठिकाना नहीं है। मनो दूध-दही न जाने किसके लिए एकत्रित हुआ है ? बच्चे कोलाहलकर रहे हैं, दोपहर के दो बज गये हैं। बच्चे खाने के लिए चिल्ला रहे है। मेरे लिए चाय की कोई व्यवस्था नहीं है मिठाइयाँ बन रही हैं। बड़े-बड़े कामों पर ध्यान है, आवश्यकता पर कोई गौर नहीं—पाँच-सात हजार का खर्चा हो जायगा। अधिकांश खर्चा खाने-पीने का है। मेरी समझ में नहीं आता दूसरों से माँगकर खाना और मकान बेचकर सम्बन्धियों का मनोरंजन करना क्यों आवश्यक है! यहाँ खानेवाला क्या एक भी यह अनुभव नहीं करता कि खिलानेवाले के पास कुछ नहीं है और खिलानेवाला यह क्यों नहीं बता देता कि मैं खिलाने में असमर्थ हूँ।

अब एक यात्रा नरकीवाड़े की भी कर लूँ। नरक की संज्ञा जिसको मैं दे रहा हूँ यह एक बड़ा शहर है। इससे पहले मैं बम्बई जैसे बड़े शहर में लम्बे अर्से तक रह चुका हूँ पर बड़े शहर की आज जो मुझे बात अखरी है वह यहाँ फैली व्यक्तिवादी स्वार्थपरता और कुंठित मनोवृत्ति को लेकर उठी है। मैं जानता हूँ कि विश्व के सभी कोने में सभ्य कहलाने वाले व्यक्ति इन बड़े-बड़े शहरों में रहते है। ऐसी स्थिति मे इनसे मेल न खाकर यदि विरोध प्रकट कर रहा हूँ तो अवश्य ही मूर्ख कहा जा सकता हूँ। दो दिन से इस बड़े शहर में आकर मुझे जो कुछ अनुभव हुआ है वह मुझसे बिलकुल मेल नहीं खा रहा है। यहाँ के वातावरण ने मुझमें हीन-भावनायें पैदा कर रखी है, मेरा अस्तित्व इसने लूट लिया है और मैं अभी निश्चित भी नहीं कर पा रहा हूँ कि इन कागजों को रँगने से और भावुकता अपनाकर मूर्खता दर्शाने से क्या लाभ है। दुनिया का सभ्य समाज यहाँ शहरों मे प्रगतिपथ पर अग्रसर है और यदि मुझमे मेल नहीं खाता तो अपने विचार-बोध पर फिर से मनन करने की आवश्यकता है।

यहाँ मुझे मार्ग के राहगीरों से लेकर घर में बसे सभी लोगों का जीवन सूना हुआ, व्यक्तिवादी, स्वार्थी, कुंठित लगा। यहाँ लोगों ने जो पहले किसी

जमाने में चाहे पूंजीवादियों को गालियाँ देते रहे होंगे, पर अब उन्होंने स्वयं भी बड़े-बड़े महल बनाकर, बड़े-बड़े पद लेकर, कारों की सुख-सुविधाओं को अपनाकर सड़क पर चलनेवालों के प्रति बिलकुल निर्मोही, कठोर, अमानवीय रुख अपना लिया है। अब सड़क पर चलनेवाले उन्हें उसी प्रकार कोस रहे हैं जैसे पहले वे कभी किसी और को कोसते रहे होंगे। शहरी सभ्यता की यह अजीब चाल है कि हम आगे चलकर वही मार्ग अपना लेते हैं जिसे कुछ समय पूर्व अनुचित कहते रहे हैं।

अब मैं अपने कार्यक्षेत्र की परिधि में वापस लौट चुका हूँ। अंधेरे में ४ˈ३ बजे मेरी यात्रा की समाप्ति होना चाहती है। वहाँ न कोई सवारी का साधन है, न मजदूर की मिलने की आस! मार्ग में पग घसीटते-घसीटते एशिया-७२, पहूनी का माधव, दातलाकुंड की युवती, मातृभूमि के सम्बन्धी, शहरों की तेज रफ्तार से दौड़नेवाली कारें, मेरे इर्द-गिर्द चक्कर काट रही हैं। घर पर बच्चे मेरा थैला सँभाल रहे हैं। मैं उनके लिए क्या लाया हूँ, पूछ रहे हैं। मैं इन्हें मूक शब्दों में कहता हूँ—थैला क्या देखते हो, मेरे अन्दर झाँककर देखो, क्या-क्या लाया हूँ……

रेडियो पर गाना सुनाई पड रहा है—

जिन्दगी कैसी है? पहेली हाय—
कभी ये हँसाये, कभी ये रुलाये।

संस्मरण तथा रेखाचित्र



सभ्यता के ठेकेदार

वीणा गुप्ता

आज के समाज मे ऐसे कितने ही इंसान है जो अपने को बड़ा सभ्य, पढ़ा-लिखा और सलीकेवाला कहते है। परन्तु जब कभी ऐसे कुछ लोगों से वास्ता पड़ता है तो दंग रह जाती हूँ। बहुत-से ऐसे लोग है जो देखने मे तो शुद्ध देसी घी ही लगते हैं। परन्तु उन्हे जब पास से देखो तो पता चलता है खाली सुगन्ध ही देसी घी की थी, वास्तविकता में तो केवल वनस्पति ही था।

बात केवल इतनी-सी है कि लोग जब अपने को बहुत सभ्य बताते हैं तो वे यह समझते हैं कि सफेद और प्रेस किये कपड़े पहनकर या टाई गले में लटकाकर ही सभ्यता का सारा कोष उनके ही अधिकार में आ गया है। हालत यह होती है उनको अच्छी तरह बैठना, बात करना या खाना भी नहीं आता।

पानी की रट

कुछ ही दिनों की बात है कि एक महाशय हमारे यहाँ खाने पर आये थे। मेरे पति के अच्छे मित्र हैं। उनकी नई-नई शादी हुई थी। सो बड़े चाव से सज-धजकर अपनी पत्नी के साथ आये और ड्राइंगरूम मे ऐसे सजे कि बस कुछ मत पूछो। उन्हे अच्छी तरह मालूम था कि घर में काम करने के लिए मैं अकेली थी। फिर भी हर पाँच-दस मिनट बाद 'पानी चाहिए, पानी चाहिए' की रट लगाते रहे। मेहमान आखिर मेहमान होता है। बीच-बीच में काम छोड़कर उन्हे पानी पिलाना पड़ा। इसका परिणाम यह हुआ कि खाना बनने मे देरी हो गई। खैर, खाना तो खाया ही गया और वे सज्जन चले गये। अगले दिन उन्होंने अपने एक मित्र को बताया कि हमारे यहाँ खाने में काफी देर होने के कारण उनका फिल्म का समय निकल गया और मूड आॅफ हो गया। जब मुझे इसका पता चला तो बहुत क्रोध आया। सोचा, यदि उन्हें फिल्म देखनी थी तो पहले कहते या फिर उनकी श्रीमती जी काम मे मेरा हाथ बँटा देतीं।

पर वे यह सब कैसे करतीं ? उनकी लिपाई-पुताई में की गई मेहनत बेकार जो हो जाती !

अँगुलियाँ चाटते रहे

एक और सज्जन थे। भाग्य से कहें अथवा दुर्भाग्य से कि उनके साथ पिकनिक का प्रोग्राम बन गया। इन सज्जन की अभी शादी नहीं हुई है। पर करने की इच्छा रखते हुए कोई लड़की हो पसन्द नहीं आती। प्रत्येक को यह कहकर रिजेक्ट कर देते हैं कि इसे खाने-पीने का तरीका नहीं आता, उसे साड़ी बाँधनी नहीं आती, उसे बात करनी नहीं आती···

हाँ, तो बात पिकनिक की थी। बर्तनों की कमी के कारण मैंने अपने पति और उनके मित्र का खाना एक ही थाली में परोस दिया और स्वयं पास में बैठ गई। बैठ तो गई पर बड़ी ग्लानि आती रही। वे महाशय रोटी के कौर में सब्जी लेकर मुँह में रखते और अँगुलियाँ फिर से कटोरी में झटका देते। फिर उन्हीं अँगुलियों को चप-चप करके चाट लेते। उस समय क्रोध तो मुझे बहुत आया पर कुछ कर नहीं सकती थी। मेरे पति भी उनकी इस हरकत से परेशान थे। पर वे भी क्या करते ? किसी तरह खाना पूरा किया। उस दिन के बाद से तो मैंने कसम ही उठा ली कि खाना भले ही साथ परोस दूँ, पर सब्जी तो कम से कम अलग-अलग कटोरियों में ही दूँगी।

पूरा चम्मच मुँह में

एक बार हमें एक डॉक्टर के यहाँ चाय पर निमंत्रित किया गया। वैसे मुझे चाय पीना अच्छा तो नहीं लगता परन्तु डॉक्टर साहब हमारे दूर के सम्बन्धी थे इसलिए जाना भी पड़ा। वहाँ भी कुछ नया ही ढंग देखा। चाय के साथ दाल मोठ खाने के लिए रखे हुए थे। प्लेट एक ही थी और चम्मच चार। डॉक्टर साहब पूरा चम्मच दाल से भरते और सीधे मुँह के अन्दर ले जाते। चम्मच जब बाहर आता तो मुँह की चारदीवारी से पूरा घिसटता हुआ आता। उसी से फिर वे दाल भरते और फिर वही क्रम। मुझे यह देखकर बड़ी घृणा हुई। डॉक्टर साहब को तो स्वास्थ्य की दृष्टि से भी यह नहीं करना चाहिए था। ऐसा करने से उनका थूक चम्मच के द्वारा सारी दाल को लगता था जो किसी दूसरे के मुँह में भी गया। चाहिए तो यह था कि वे चम्मच से दाल उठाकर दूसरे हाथ की हथेली पर रखते और मुँह में डालते। या फिर चम्मच को मुँह से कुछ दूरी पर रखकर ही दाल मुँह में डालते।

नाक साफ करती

परसों की ही तो बात है, मैं अपनी एक सहेली के घर गई थी। शिष्टता से उसने चाय को पूछ लिया। फिर वही परेशानी। मुझे चाय की इच्छा कभी होती नहीं और आजकल जहाँ जाओ चाय के अतिरिक्त कुछ मिलता नहीं। खैर, उसके काफी जोर देने पर मैंने मान लिया। कुछ देर में वह पकौड़े भी तलकर ले आयी। प्लेट मेज पर रखकर वह सामने बैठ गई। बैठना था कि उन्हें एक छींक आयी। छींक आते ही उन देवी जी ने सीधे हाथ की अँगुली और अँगूठे के बीच अपना नाक दबाया और ढेर-सा गन्द निकाल बाहर किया। हाथ को न पोंछा, न साफ किया, उठाया पकौड़ा और गप से मुंह मे। इतना सब देखने के बाद किसकी इच्छा खाने को करेगी ! किसी तरह खाली चाय पीकर वहाँ से आ पायी।

इन्हें कौन सिखाए !

अब एक दृष्टि यदि आज के इन सलीके और सभ्यता के ठेकेदारों पर डालें तो पता चले कि वास्तव में ये कितना कुछ जानते है। इतनी शिक्षा प्राप्त करने के बाद भी यदि मनुष्य को ये छोटी-छोटी बाते सिखानी पड़ें तो कौन सिखाए ! ये बातें ऐसी है कि न तो कोई कह सकता है और न ही कोई टोक सकता है। हाँ, अच्छी घरेलू परम्परा से यदि माता-पिता बच्चों को शुरू में ही ये बातें समझाते रहें तो कुछ बात बन सकती है और लोग इस तरह से दूसरों की पैनी निगाह से बच सकते हैं।

काश, फिर मिल जाये, शरारत का वह अधिकार

□

कुन्दनसिंह सजल

विद्यार्थी-जीवन शरारतों का मेला होता है। विद्यार्थीगण शरारतों को अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानते हैं। संभवतः आश्रम-व्यवस्था में विद्यार्थियों के लिए शरारतें अभिशाप समझी जाती थी किन्तु जैसे-जैसे युग बदले हैं और यह सदी प्रारम्भ हुई है, अधुनातन विद्यार्थियों के लिए शरारतें तो आभूषण बन गई है, विशेषता बन गई है। हम जब विद्यार्थी थे, रेलगाड़ी, बसों और सिनेमाघरों को अपने ससुरालवालों की सम्पत्ति समझते थे और बिना टिकिट, बेहिचक इनके उपयोग को अपना अधिकार समझते थे। हमें याद नहीं आता कि हमने विद्यार्थी-जीवन में कभी रेलगाडी, बस या सिनेमा का टिकट खरीदा हो किन्तु एक बात अवश्य थी, सफर को या चित्र-दर्शन को हम अपने गिरोह के साथ निकलते थे, एकाकी नही। एक बार एक सज्जन से हमारा साक्षात्कार हुआ। वे हमें देखते ही भाँप गये और बोले, "पढते हो ?" हमने विनम्रतापूर्वक उत्तर दिया, "जी हाँ।" "हड़ताल कितनी बार की ?" उनका दूसरा प्रश्न था। "जी, अभी तक तो ऐसा अवसर आया नही।" हमने सहज-भाव से उत्तर दिया। 'कितनी बार बसें जलाईं','कितनी सरकारी सम्पत्ति नष्ट की','कितने अध्यापकों को पीटा', 'कितनी बार फेल हुए', 'कितनी बार रेस्टीकेशन हुआ' आदि प्रश्नों का जब हमने नकारात्मक उत्तर दिया तो आप फर्माने लगे, "यार, क्यों विद्यार्थी के नाम को कलंकित करते हो। पढ़ने का चक्कर छोड़ो और घर बसाने की चिन्ता करो।"

हम अपने विद्यार्थी-जीवन में हमेशा छात्र-नेता रहे थे और ऐसी बात नहीं थी कि हड़ताल, तोड-फोड़ तथा अध्यापकों से उलझने के अवसर हमारे सामने न आए हों किन्तु अपने वंश के संस्कार हम पर इस कदर हावी थे कि हम बचपन से ही अपने वंश की परम्पराओं के कायल हो गए थे और अनुशासन हमारे रोम-रोम में घर किये हुए था। शालीनता को हम आवश्यक वस्त्र की भाँति ओढ़े हुए थे।

विद्यार्थी-जीवन में हमारी हमेशा यह कोशिश रही कि हम शरारतें भी करते रहें तथा हमारे बुजुर्ग एवं अध्यापक हमें शरीफों की पंक्ति से भी न निकालें। आप सच मानिए, हम अपनी कोशिश में सफल रहे। मुहल्ले के बुजुर्ग तथा हमारे अध्यापक हमें अपने मुहल्ले और विद्यालय का सबसे शरीफ विद्यार्थी समझते थे और उनकी दृष्टि से ओझल हम विद्यालय तथा मुहल्ले में विद्यार्थियों की शरारती गतिविधियों के संचालक थे।

हम अपने पिताजी की एकमात्र संतान हैं अतः कम उम्र में ही हमारे गले में विवाह की फाँसी लगना आवश्यक था। नतीजा यह हुआ कि हम विश्वविद्यालय स्तर तक, इच्छा होते हुए भी, अपना अध्ययन अनवरत न रख सके और हमारे सब सपने, वर्षा आने पर कच्ची भीत की भाँति, श्रीमती जी के गृह-प्रवेश के साथ ही ढह गये। हम मजबूर होकर सबसे शीघ्र और आसानी से प्राप्त अध्यापक की नौकरी करने लगे।

निरन्तर आठ वर्ष तक चाक घिसने के पश्चात् हमारे धूमिल जीवन में विद्यार्थी-जीवन-रूपी प्रभात का आलोक पुनः प्रकट हुआ और हम एक कॉलेज में विद्यार्थी अध्यापक के रूप में बी. एड. की ट्रेनिंग के लिए प्रविष्ट हुए। हमारे मस्तिष्क में पुनः वे ही विद्यार्थी-जीवन की शरारतें कुलाँचें भरने लगीं और हम ऐसे अवसर की प्रतीक्षा में रहने लगे कि कब शरारत करने का सुअवसर आये। वैसे कॉलिज में हम बी. एड. की ट्रेनिंग लेने भर्ती हुए थे, शरारतों की ट्रेनिंग लेने नहीं। आखिर हमारी मौन-साधना रंग लायी और एक दिन ऐसा आया कि हम एक के बाद एक तीन शरारतें कर बैठे उस दिन।

हुआ यों कि हमारे प्रिंसिपल साहब हमें मनोविज्ञान पढ़ाते थे। माइनसपॉइंट यह थी कि उनका पीरियड मध्यान्तर से पूर्व आता था। आप पढ़ाते-पढ़ाते इतने खो जाते थे कि पूरा मध्यान्तर का समय भी अपने कालांश में ले लेते थे। सारी कक्षा मन मसोसकर रह जाती थी। न कोई पेशाब की हाजत मिटा सकता था और न कोई बीड़ी-सिगरेट, चाय-पान की इच्छा पूरी कर सकता था। एक दिन एक साथी ने मुझसे कहा, "यार सजल, इस खूसट प्रिंसिपल को कोई ऐसा सबक दो कि यह मध्यान्तर तो खराब न किया करे रोज। मैं तुम्हें चाय पिलाऊँगा।" उस रोज मैं जान-बूझकर अगली पंक्ति में जाकर बैठ गया। कालांश शुरू हुआ। प्रिंसिपल साहब कक्षा में तशरीफ लाये और शुरू हो गये। मध्यान्तर का पीरियड लगा। मैंने हल्के-से खाँसा, प्रिंसिपल साहब की निगाह मुझ पर पड़ी और मेरी निगाह अपनी कलाई पर बँधी घड़ी पर। उन्हें समझने में एक पल न लगा और बोले, "क्षमा करना, अभी एक मिनट में क्लास छोड़ता हूँ।" और वे सचमुच एक मिनट पूर्व ही कक्षा से कागज-पत्र समेटकर पीठ दिखाते नजर आये। वे हमारे मित्र तो हमारी हरकत समझ गये। यूनियन का

चुनाव जीतकर जब हम प्रिंसिपल साहब के सामने पहुँचे और हमारे परिचय की जब बारी आयी तो पहले ही बोल उठे, "रहने दीजिए, आपको तो मैं भली प्रकार जानता हूँ। आपने मुझे अपनी कक्षा से भगा जो दिया था।" सुनकर सभी हँसने लगे।

कॉलेज में एक व्याख्याता थे मिस्टर शर्मा। आप हिन्दी तथा अंग्रेजी दोनों में एम. ए. थे। शर्मा जी की विशेषता यह थी कि वे इराक-रिटर्न थे, इसलिए आपके पढ़ाने का माध्यम अंग्रेजी था। कक्षा के सभी विद्यार्थी (अध्यापक) उनकी इस आदत से परेशान थे क्योंकि सभी विद्यार्थी (अध्यापक) बहुत कम को छोड़कर रॉयल डिवीजन (तृतीय श्रेणी) के डिग्रीधारी थे। शर्मा जी की एक और विशेषता थी कि आप आवश्यकता से बहुत अधिक लम्बे थे। पढ़ाने खड़े होते और यदि श्यामपट्ट के सामने आ जाते तो आपका सिर श्यामपट्ट के ऊपर की चौखट को छूता था। उस दिन जैसे ही शर्मा जी के विषय का कालांश प्रारम्भ हुआ और पहले कालांश के व्याख्याता कक्षा छोड़कर गये, हमने एक चाक लिया और श्यामपट्ट पर डिंगल का यह दोहा लिख दिया—

सखी, लिहारो कंतड़ो, लाम्बो घणूं लचाक।
चौमासा री भींत ज्यूं, पड़ै दचाक दचाक॥

शर्मा जी आये और श्यामपट्ट की ओर मुखातिब हुए। श्यामपट्ट पर उक्त दोहा लिखा देखकर आगबबूला हो गये और उपस्थिति लिये बिना ही कड़ककर बोले, "किसने यह शरारत की है?" कक्षा के सभी साथी शांत मन-ही-मन हँस रहे थे। हम पर जो बीत रही थी, हम जान रहे थे। एक मिनट मौन के पश्चात् शर्मा जी ने वही प्रश्न और भी तीव्र आवाज में दोहराया तो हम सिर झुकाए हुए अपने स्थान पर खड़े हो गए। हमारा खड़ा होना था कि कक्षा की हँसी एक साथ फूटी और नतीजा यह हुआ कि शर्मा जी दुम दबाकर कक्षा छोड़कर भाग गये और फिर कभी उन्होंने अंग्रेजी में नहीं पढ़ाया।

प्रथम घटना के सूत्रधार मित्र हमें अपने वादे के अनुसार सायंकाल एक रेस्तरां में चाय-पान के लिए ले गये। हमारे साथ तीन-चार मित्र और भी थे। हम सभी बैठे चाय सिप कर रहे थे कि पास की मेज पर एक सज्जन अपने साथियों से शेखी बघार रहे थे, "मैंने आज मिस्टर नंदा और वर्मा को, जो अंग्रेजी और गणित के अध्यापक हैं, कक्षा के सामने ही डाँटा और उन्हें बताया कि ये विषय कैसे पढ़ाए जाते है।" बातचीत से ज्ञात हुआ कि आप मिस्टर माथुर एक सेकण्डरी स्कूल के प्रधानाध्यापक हैं तथा हिन्दी से एम. ए. है। यह भी ज्ञात हुआ कि एक वर्ष पूर्व तक आप हिन्दी के वरिष्ठाध्यापक थे। हम उनकी बातें बड़े ध्यान से सुन रहे थे तथा हमें खामोश देखकर साथी लोग सोच रहे थे कि हम जरूर कुछ शरारत की सोच रहे हैं। माथुर साहब की बात समाप्त होते ही

हमने उनसे अर्ज किया, "क्यों माथुर साहब ! आप बताइये कि जब कोई वरिष्ठ अध्यापक होता है तब तो उसमे एक ही विषय की योग्यता होती है किन्तु प्रधान-अध्यापक होते ही उसमें सभी विषयों का ज्ञान कैसे समाविष्ट हो जाता है !" इतना सुनना था कि हमारे साथी तथा उनके साथी इतनी जोर से हँसे कि रेस्तरां के माहौल पर वह हँसी एक आकर्षण बनकर छा गई । नतीजा यह हुआ कि माथुर साहब अपने साथियों को वही छोड़कर खिसियाने-से भाग गये । ये घटनाएँ जब अकेले मे भी स्मरण हो आती है या साथी लोग मिलने पर दुहरा देते हैं, तो बरबस हँसी फूट पड़ती है और हम मन-ही-मन सोचने लगते है कि काश, ऐसी शरारतों के लिए फिर मिल जाये—विद्यार्थी-जीवन ।

एक चित्र की कहानी हक़ीक़त की जुबानी

□

रमेश गर्ग

२० जुलाई, ७२

युनिसेफ द्वारा आयोजित एक अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी जो कि फ्रांस में होगी, उसमें भाग लेने के लिए मैं एक चित्र 'वसन्तोल्लास' शीर्षक पर बना रहा हूँ। दो-चार दिन से रात को नींद नहीं आती। दिन में दस-बारह घंटे एक लगन बैठकर इस चित्र को बनाता हूँ और रातभर उसे देखते रहने से जी नहीं भरता। प्रतियोगिता में जीतने की महत्त्वाकांक्षा है सो अलग, इससे भी अधिक सुखानुभूति इस चित्र से मिलनेवाली कला-साधना से मिल रही है। मैं सोचता हूँ जिस परिश्रम से मैं यह चित्र बना रहा हूँ वह विश्व के कला-जगत में एक उत्कृष्ट चित्र सिद्ध होगा।

२७ जुलाई, ७२

कला से सम्बन्ध तो वैसे पन्द्रह वर्षों से बना हुआ है, पर कला का साक्षात्कार आज ही हुआ। जो चित्र वसन्तोल्लास मैं बना रहा हूँ, यह एक विशाल चित्र है, ऊपर के अर्ध भाग में हरे भरे कुंजों से और पुष्पों से लदे मकान हैं। आँगन में हाथ का सहारा लिये, शरीर का भार संभाले हुए एक स्त्री' है। सम्पूर्ण चित्र 'राजपूत शैली' से प्रेरित कला की आधुनिकतम विधाओं से अभिव्यक्त करने का मैं प्रयास कर रहा हूँ। घनवाद, अभिव्यंजनावाद, प्रभाववाद, यथार्थवाद, अतियथार्थवाद, कॉलाज व अमूर्तवाद आदि मिश्रित शैलियों का उपयोग इसमें किया जा रहा है। इस नारी की सहज-सुलभ सरलता, कोमलता, स्वाभाविकता के अतिरिक्त देहाग्नि और प्रतीक्षा में आतुर विह्वलता वसन्त राग से झंकरित होकर समस्त वातावरण को चेतन करती हुई सूक्ष्म भावाभिव्यक्ति में परिणत हो सके, ऐसा मेरा निरन्तर प्रयास है। कचनार, गेहमल, टेसू, ढाक, गौराम

तथा पलास आदि पुष्प, मंजरी से लदे रसालवृक्ष के मध्य जीव-विहीन उपवन का दृश्य और वहाँ पर विश्राम लेती यह थकित नारी विरहिणी की अन्तर्व्यथा के साथ-साथ ऋतु-सम्राट की अठखेलियों से सम्मोहित हो ऐसा आभास दे कि कहा नहीं जा सके कि यह 'विप्रलब्धा' है या 'वासकसज्जा', 'रूपगर्विता' है या 'प्रोषितपतिका'।

मेरे इस प्रयास में एक सप्ताह से जो सफलता नहीं मिल रही थी उससे बड़ी बेचैनी थी। आज एकाएक इस आकृति की सफलता पर और स्त्री के सौन्दर्य पर मैं विचलित हो गया हूँ। मैं उसके सामने एक लम्बे समय तक बैठा हुआ अब यह भूल-सा गया हूँ कि वह एक चित्र है क्योंकि ऐसी अपूर्व सुन्दरता तो मैंने पहले कभी चर जगत मे देखी नहीं, उस पर वसन्त से लबालब भरी हरियाली में किसी सुन्दर स्त्री का इस प्रकार स्थिर लेटे रहना और उसे घंटों सामने बैठकर निहार पाना चल जगत में तो सम्भव नहीं और अचल सौन्दर्य मुझे इस प्रकार विचलित कर असहाय कर देगा, यह आज ही अनुभव हुआ।

२६ जुलाई, ७२

चित्र वसन्तोल्लास को देखने के लिए कुछ दर्शक एकत्रित हो गये हैं। वे स्त्री के अंग-सौष्ठव, रूप-माधुर्य और भावभंगिमा की तो खुलकर प्रशंसा कर रहे हैं पर मैं देख रहा हूँ कि वसन्त के उल्लास की गहराई में तो एक-दो ही दर्शक पहुँच पा रहे है। 'स्त्री' के सौन्दर्य पर रीझकर मानव-मस्तिष्क अधिक कुंठित हो गया है। एक महानुभाव पर कुछ नशे की-सी प्रतिक्रिया देखी गई। एक सज्जन स्त्री के मुख पर हँसी की झलक देने की जिद्द करते रहे। एक अन्य साथी आकृति की मांसल चिकनाई पर रीझते रहे और इस चित्र के आगे दस व्यक्तियों की दस प्रकार की प्रतिक्रिया सुनना रोचक लगा और उनसे प्राप्त अनुभव आवश्यक भी थे।

■ अगस्त, ७२

आज ज्यों ही 'वसन्तोल्लास' को घर से विदा करने को प्रस्तुत हुआ कि बीस दिन से ठहरी हुई वर्षा शुरु हो गई। चित्र की वह आकृति वर्षा में भिगोने के लिए घर से निर्वासित कर दी गई। इतने दिनों से जिसे दिल से लगा रखा था भीगने के लिए छोड़ दी गई। घर से बाहर उस प्रिय, कोमल, सुन्दर, मधुर, भावुक, आरामप्रिय, गृहवासिनी, सुहासिनी को क्या-क्या कष्ट सहन करने पड़ेंगे, कुछ भी विचार नहीं किया। इसीलिए तो मुझसे दूर करके कोई चित्र को मैं प्रसन्न नहीं होता। लोगों मे तो इतना भी बोध नहीं। कोई कह रहा था, 'इस बक्से में क्या है? फिल्म के पोस्टर हैं क्या? दुकान के साइनबोर्ड होंगे,

काँच होंगे।' मैं मन-ही-मन कुढ़ रहा था कि यह क्यों नहीं कहते कि मेरे हृदय की पुकार होगी, मेरी साथिन होगी या गृहिणी होगी। दिल्ली के एक व्यक्ति के पूरे टिकट के पैसे लगकर तो मेरी भावनाओं को और बल मिल गया था कि बक्से में अवश्य ही कोई जीवित आत्मा का निवास हुआ। जब से उसे घर से बाहर किया है मूसलाधार वर्षा हो रही है और उस पर ओढ़ने का परिधान भी मैंने नहीं जुटाया क्योंकि मुझे क्या मालूम था कि वर्षा उसे गन्तव्य स्थान पर पहुँचने से पहले ही बैरिन का व्यवहार करने लगेगी। कल रात भी नींद नहीं आयी। आज दिन में बेचैनी है। अनिष्ट की आशंका बनी हुई है कि उसका क्या होगा, क्या बनेगा, क्या बिगड़ेगा?

१४ सितम्बर, ७२

लगभग एक महीना हो गया है, जीवन एक घोर निराशावाद में गुजर रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय कला-प्रदर्शनी में भेजा गया मेरा चित्र 'वसन्तोल्लास' की अनुपस्थिति ने एक अभाव की स्थिति बना रखी है। उसकी वापसी की आशा ने इन दिनों के मेरे जीवन को पल-पल इन्तजार में बीत जानेवाले उन क्षणों से जोड़ दिया है जहाँ नायिका अपने परदेश से लौटनेवाले साथी की आस में घुन लगाकर 'कोयला भई न राख' की दशा में पहुँच जाती है। इन दिनों मैं कई बार तो रातों जागकर प्यासी पलकों से उसकी वापसी का इन्तजार किया करता हूँ। यूँ भी जीवन का अधिकांश भाग—

> उम्रे दराज माँगकर लाये थे चार दिन,
> दो आरजू में कट गये दो इन्तजार में।
>
> (गालिब)

ही गुजरा है। मैं उसके छिन जाने की आशंका से अब इतना निराश हो चुका हूँ कि जी कहता है तुम्हारा जीवन 'जल-जलकर ठूँठ होने के लिए' ही है। उसकी वापसी को भूलकर कभी आस न करना उम्र से ढला हुआ यह दिल और दिमाग निराशा की मार को अब सहन नहीं कर सकेगा। अधिक जीने की चाह हो तो 'आशा' की राह को मत छूना वरना भटक जाओगे।

२६ सितम्बर, ७२

चित्र 'वसन्तोल्लास' की कमी ने जीवन में अरुचि पैदा कर दी है। सब कुछ उसके बिना 'थोथावाद' नजर आने लगा है। ऐसा लगता है जीवन में अब कुछ करने से कोई लाभ नहीं। कुछ करने या न करने से जीवन में कुछ बनने या बिगड़नेवाला नहीं है।

कुछ इधर बैठे, उधर बैठे, जीवन की राह
यूं ही गुजर गई।
गुजरना था जिसे गुजरती ही और होना
भी क्या था ?

१३ अक्टूबर, १९७२

लगता है चित्र लापता हो गया है। युनिसेफ को कई पत्र डाले, कोई प्रत्युत्तर ही नहीं। यहां तक कि उसकी पहुँच तक का कोई संकेत नहीं। यदि वह अपहरण कर लिया गया है तो किसी चित्र का नहीं बल्कि मेरी कल्पना की नायिका का। एक ऐसी स्त्री का कहा जाना चाहिए जो मेरे लिए सजीव थी, आत्मीय थी, अद्वितीय थी, चिरसंगिनी थी। पता नहीं उसके अभाव में मैं कितना बौरा गया हूँ कि मुझे बार-बार उच्छ्वासें उठती हैं, कि आखिर तुम कहां चली गई ? किसने तुम्हें मुझसे चुरा लिया, छीन लिया ? कुछ अता-पता तो तुमसे खुद से ही पाने की आस है। सोचता हूँ कभी लिखोगी, अपनी सुध भिजवाओगी।

२० नवम्बर, १९७२

युनिसेफ के ऑफ़िस जाकर मैंने मालूम किया कि वह चित्र कहां है। उत्तर मिला—यहां कोई चित्र हमने प्राप्त नहीं किया। वही जो कुछ अनिष्ट की आशंका थी घटित हो गई है। चित्र कैसा, जीवन-साथी कहिये, जिसके बिना जीवन दूभर हो गया है। नोटिस दस हज़ार का वैसे मैंने दे दिया है पर क्या करूँगा। दस हज़ार ही सही, उनको पाकर गृहस्वामिनी, जीवन-संगिनी को बाजारू भाव पर छोड़ने से चैन तो नहीं आ सकती। यह मुझसे नहीं हो सकेगा। मुझे तो एक बार उसे खुद को पाने की, अपने साथ रखने की और जीवन को साथ-साथ बिताने की मांग है। बस, वह पूरी हो जाय, मैं समझूंगा दस हज़ार से भी अधिक मेरा खोया हुआ जीवन मिल गया। कुछ-कुछ उस चिरसंगिनी पर भी तरस आता है कि घर से बाहर क्या निकली, लापता ही हो गई। समझ में नहीं आता कि मेरी परीक्षा ले रही है या फिर तरसा-तरसाकर ही वापस लौटेगी। मेरे अटूट सम्बन्ध तो ऐसे हैं कि किसी ने तुम्हें अपहरण करने का प्रयत्न भी किया हो तो तुम स्वयं यह कह सकती हो कि तुम्हारा और मेरा एक ऐसा अटूट सम्बन्ध है, एक ऐसा रिश्ता जो जीते-जी हम दोनों से जुदा नहीं किया जा सकता।

जहां तक मेरा प्रश्न है तुम विश्वास रखना मैं दस हज़ार तो क्या दस लाख ठुकरा दूंगा, पर तुम्हें पाकर रहूँगा और जब तक तुम्हें नहीं पा लूंगा चैन की सांस नहीं लूंगा। तुम कहां हो, कुछ चिह्न तो बताओ !

४ जनवरी, १६७३

चित्र 'वसन्तोल्लास' के मिल जाने की सूचना से मेरा रोम-रोम हर्ष से खिल उठा है कि 'तुम' मिल गई हो। बिलकुल आज मैं ऐसे ही क्षणों का अनुभव कर रहा हूँ कि जीवन-साथिन एक बार खो जाय और फिर मिले तो क्या ही प्रसन्नता हो। सोचता हूँ एक बार वह आ जायें तो खूब जी भरकर बातें करूँगा। शिकायतें करूँगा कि तुम कहाँ चली गई थीं। तुम्हारा लापता होना कोई अच्छी बात तो नहीं है और तुम्हें लापता करने में किसी और का हाथ था तो फिर तुम्हें घर से निकालना उचित बात नहीं।

१२ जनवरी, १६७३

चित्र वापस लौट आया। जब तक तुम्हें देख नहीं लिया यही शक बनी रही कि तुम वापस लौट भी गई हो या नहीं, सुरक्षित भी हो या नहीं। कष्टों के थपेड़ों ने तुम्हें क्षतिग्रस्त तो नहीं कर दिया। आशंका थी कि तुम कहीं इस रूप में तो वापस नहीं मिलोगी कि मृत पायी जाओ। शकुन मनाकर ही तुम्हें वापस प्राप्त किया था। तुम्हें पाकर कैसा संयोग हुआ है शब्द-रूप में नहीं कहा जा सकता। हाँ, इतना जरूर कह सकता हूँ कि आज ही एक साथी ने मुझे यह बधाई दी है कि अब तो रातें आराम-सुख से कटेंगी।

हास्य
तथा व्यंग

क्यू में खड़ा आदमी

□

ओम अरोड़ा

जब देश आजाद हुआ था तो एक खेल हुआ था, जिसको 'म्युजिकल चेयर' कहते हैं। इस खेल में थोड़ी-सी कुर्सियाँ होती हैं और बहुत सारे आदमी होते हैं। संगीत बजना शुरू होते ही सब लोग कुर्सियाँ लेने के लिए दौड़ते हैं। जो ज्यादा फुर्तीले और चुस्त होते हैं वे कुर्सियाँ दबोच लेते हैं, शेष लोग खड़े ताकते रह जाते हैं। भारत में जब आजादी का संगीत बजा तो यही खेल हुआ। जो चुस्त और चालाक थे उन्होंने कुर्सियाँ दबोच लीं और बाकी सारा देश टाँगों के भार खड़ा रह गया। जिन्होंने कुर्सियाँ दबोच लीं वे आराम से बैठ गए और कसम खा ली कि सारी उम्र इन्हीं कुर्सियों पर बैठे रहेंगे और कोशिश करेंगे कि मौत के बाद भी कुर्सी उनके साथ जाए ताकि स्वर्ग या नर्क में बैठने का कोई झंझट न रहे। जो लोग (यानी सारा देश) खड़े थे उन्हें उन्होंने आदेश दिया कि वे 'क्यू' बनाकर खड़े हो जाएँ और तब तक खड़े रहें जब तक आजादी नम्बर दो नहीं मिल जाती और नई म्युजिकल चेयर का खेल नहीं होता।

इस प्रकार उस महान् देश में 'क्यू' की महान परम्परा की शुरुआत हुई, और वह परम्परा अभी तक बरकरार है। कुछ लोग राशन की क्यू में खड़े हैं तो कुछ लोग क्यू में इसलिए खड़े हैं कि उन्हें उस बस का इन्तजार है जो उन्हें आॉफिस में ले जाएगी। कुछ लोग क्यू में खड़े रहकर सिनेमा का टिकट कटवाना चाहते हैं। ऐसे लोग बड़े मजेदार किस्म के होते हैं। वे लोग छब्बीस साल से केवल इसीलिए क्यू में खड़े हैं कि तीन घंटे आराम से कुर्सी पर बैठकर खयाली दुनिया देखकर काट सकें। क्यू में तपस्या करने के बाद इन लोगों को ऐसी दुनिया दिखाई जाती है जिसमें एक क्लर्क के पास कार होती है और एक मजदूर के पास बढ़िया फ्लैट होता है। इन सब किस्म की क्यूओं में सबसे लम्बी क्यू रोजगार-दिलाऊ दफ्तर के आगे लगी हुई है। इस क्यू की लम्बाई नापने के लिए देश-भर के नेता और आंकड़ेबाज लगे हुए हैं, पर अपने-आपको असफल पा रहे हैं। ये जितना इस क्यू को सुबह से शाम तक नापते हैं उतनी ही वह रात-रात में

और लम्बी हो जाती है। वास्तव मे यह क्यू नही, शैतान की आंत है। शैतान की आंत को नापने के लिए जरूरी है कि पहले शैतान को मारा जाय और फिर उसकी आंत निकालकर नापी जाए।

कुछ क्यू सीधी होती है और कुछ क्यू टेढ़ी होती हैं। सीधी क्यू में आसानी से घुसपैठ की जा सकती है। हर क्यू के आगे कुछ हजूम-सा होता है जिसे घुसपैठियो का हजूम कहा जा सकता है। ये लोग क्यू मे खड़े होनेवालो को मूर्ख समझते हैं और सीधे खिड़की मे हाथ डाल लेने की कला में माहिर होते हैं। खिडकी के भीतर बैठा क्लर्कनुमा आदमी कभी-कभी बड़ा आदर्श किस्म का हो जाता है। वह घुसपैठ करनेवालो को बुरा-भला कह डालता है। उसकी सहानुभूति क्यू मे पीछे खड़े लोगो से होती है। परन्तु वह कुछ करने में अपने-आपको हमेशा विवश पाता है और मन मसोसकर रह जाता है, क्योंकि उसे मालूम होता है कि यदि वह इस प्रकार के मामले मे कोई हस्तक्षेप करने की कोशिश करेगा तो उसे कुर्सी छोड़नी पड़ेगी और कुर्सी छोड़ने मे उसे यह खतरा बराबर लगा रहता है कि कही वह कुर्सी उसके नीचे से निकल न जाए और उसे भी क्यू मे खड़ा होना न पड़ जाए। वह केवल परेशान होता रहता है। सारा देश छब्बीस साल से इन घुसपैठियो से परेशान है लेकिन क्यू मे खड़े शरीफ लोग, वह क्लर्क और देश इन घुसपैठियों का कुछ नही बिगाड़ सकते।

क्यू रेलगाड़ी की तरह होती है। यह जितनी लम्बी होती है उतनी ही धीरे चलती है कि इसे चलते देखा नही जा सकता। दुनिया में सबसे तेज चलने-वाले रॉकेट वगैरह अमेरिका के पास हैं तो क्या हुआ। दुनिया में सबसे धीमी चलने वाली क्यू पर यह देश भी गर्व कर सकता है।

क्यू में खड़ा आदमी सुखी भी होता है और दुखी भी। दुखी वह अपने से आगे खड़े लोगो को देखकर होता है और सुखी वह अपने से पीछे खड़े लोगों को देखकर। बतर्ज श्रीकान्त वर्मा आदमी क्यू में खडा होकर 'सुखी-दुखी होकर—दुखी-सुखी होता है'। अपने आगे के आदमी को वह अपना दुश्मन समझता है और अपने से पीछे खड़े आदमी को टुच्चा। जो आदमी क्यू में सबसे पीछे खड़ा होता है वह महादुखी होता है। वह तब तक महादुखी रहता है जब तक ,कोई आदमी आकर उसके पीछे नही खडा हो जाता। अगर किसी आदमी को निरन्तर क्यू मे सबसे पीछे खड़ा रखा जाए तो या तो वह आत्म-हत्या कर लेगा या महात्मा बुद्ध बन जाएगा!

भारतीय संविधान के अनुसार प्रत्येक नागरिक को क्यू में खड़े होने की पूरी-पूरी स्वतंत्रता है। क्यू में चाहे तो आदमी अपनी दोनो टाँगों का इस्तेमाल कर सकता है और चाहे तो एक-एक टाँग पर मुर्गे की तर्ज में भी खड़ा हो सकता है। अनुभव बताता है कि क्यू में आदमी आमतौर पर पहले तो दोनो

टाँगों पर खड़ा रहता है और फिर बारी-बारी से दाहिनी और बायी टाँग पर खड़ा होना शुरू हो जाता है और यह क्रम तब तक चालू रहता है जब तक कि खड़ा होनेवाला या तो क्यू के अन्तिम सिरे पर नही पहुँच जाता या बेहोश होकर गिर नहीं जाता। अगर क्यू मे कोई आदमी बेहोश होकर गिर जाता है तो उसके पीछे खड़े लोगो को बड़ी खुशी होती है, क्योकि क्यू मे खड़ा प्रत्येक आदमी मन ही मन यह प्रार्थना किया करता है कि हे भगवान् ! मेरे आगे खड़े सब लोगों को ठिकाने लगा दे।

मुफ्त

□

ओम अरोड़ा

आजकल मैं बाजार से बहुत-सी वस्तुएँ मुफ्त ले आता हूँ। अगर साबुन की एक टिकिया की जरूरत हो तो टूथपेस्ट की दो बड़ी ट्यूब खरीद लेता हूँ। साबुन साथ मुफ्त मिल जाता है। छः रुपये की बाल्टी मुफ्त लेना चाहता हूँ तो छब्बीस रुपये का कपड़े धोने का पाउडर खरीदने से काम बन जाता है। छोटे-से रूमाल की जरूरत हो तो चाय के बड़े पैक में से निकल आता है। दो-चार ब्लेडों की जरूरत हो तो उन पर पैसे खर्च नहीं करता, टैल्कम पाउडर खरीद-कर प्राप्त कर लेता हूँ। तात्पर्य यह कि आटा-दाल को छोड़कर आजकल प्रत्येक आवश्यकता की वस्तु को मुफ्त प्राप्त किया जा सकता है, बशर्ते कि आप पर्याप्त मात्रा में अनावश्यक वस्तुएँ खरीदने का साहस रखते हों। और फिर अनावश्यक भी क्या है? जो वस्तु आज अनावश्यक है, वह कल आवश्यक बन सकती है। यदि आप कुँआरे होते हुए भी बेबी-फूड का बड़ा डिब्बा छोटा रूमाल प्राप्त करने के लिए खरीद लेते है तो चिन्ता की क्या आवश्यकता है? आखिर कल को आपकी शादी तो होगी ही और शादी होगी तो बच्चे भी होंगे और आपका बेबी-फूड खरीदना सार्थक हो जाएगा। इससे एक लाभ यह भी होगा कि बेबी-फूड के डिब्बे पुराने होकर बेकार हो जाने के भय से आप जल्दी ही शादी करवा लेंगे।

मेरा तो मुफ्त के प्रति मोह इतना बढ गया है कि मैं केवल वही वस्तुएँ खरीदता हूँ, जिनके साथ कुछ न कुछ मुफ्त मिले। दूकानदार से सबसे पहले यही पूछता हूँ कि फलां वस्तु के साथ क्या मुफ्त मिल रहा है? अगर किसी वस्तु के साथ कुछ भी मुफ्त नहीं मिल रहा हो तो उसकी खरीदारी तब तक के लिए स्थगित कर देता हूँ, जब तक कि उस वस्तु का निर्माण करनेवाली कम्पनी कुछ मुफ्त देने की योजना चालू नहीं करती। इस प्रकार काफी मितव्ययता हो जाती है। एक लाभ और भी है, मुफ्त वस्तुएँ प्राप्त करने के लिए की जाने वाली खरीदारी से संग्रह भी हो जाता है और भविष्य की चिन्ता नहीं रहती।

उदाहरण के लिए, मेरे पास पिछले दिनों चली मुफ्त योजनाओं के परिणाम-स्वरूप कपड़े धोने का इतना पाउडर इकट्ठा हो गया है कि अब मुझे आनेवाले दस साल तक कपड़े धोने का पाउडर खरीदने की आवश्यकता नहीं है।

मेरी पत्नी का विचार है कि मुफ्त के चक्कर में मैं न केवल अनाप-शनाप वस्तुएँ खरीद लाता हूँ बल्कि उनके पैसे भी ज्यादा दे आता हूँ। पिछले दिनों मैंने टैल्कम पाउडर के दो डिब्बे खरीदे जिनके साथ पूरे तीन ब्लेड मुफ्त मिले थे। पत्नी का कहना है कि ब्लेड मुश्किल से पचास पैसे के होंगे जबकि पाउडर का मूल्य मैं एक रुपया ज्यादा दे आया। वह ऐसा सोचती है क्योंकि उसे मुफ्तवादी दर्शन का ज्ञान नहीं है। मुफ्तवादी दर्शन के अनुसार महत्त्व इस बात का नहीं है कि पाउडर की कीमत कितनी ज्यादा लगी बल्कि महत्त्व उस खुशी का है जो तीन ब्लेड मुफ्त प्राप्त होने पर होती है। यह खुशी कुछ वैसी ही होती है जैसी किसी जेबकतरे को जेब सफलतापूर्वक काट लेने पर होती है। बाद में चाहे उसे पता चले कि वह उसकी अपनी ही जेब थी।

जिस वस्तु के साथ मुफ्त प्राप्त होने का आभास जुड़ा हो, उसके उप-भोग में जो आनन्द प्राप्त होता है, वह खरीदी हुई वस्तु में दुर्लभ है। मुफ्त मिली हुई साबुन की टिकिया से जब मैं स्नान करता हूँ तो लगता है, महँगाई और दूकानदारों की ठगने की आदत मैल बनकर बह रही है। परोपकार साबुन के झागों के रूप में सर्वत्र व्याप्त रहा है। साबुन मुफ्त देनेवाली कम्पनी की कीर्ति की भीनी-भीनी सुगन्ध स्नानघर के वातावरण में फैल रही है। इस प्रकार की अनुभूतियाँ केवल मुफ्त के साबुन के उपयोग से ही प्राप्त की जा सकती है। महँगाई के इस ज़माने में खरीदी हुई साबुन से तो आँखें चिरमिराने लगती है और शरीर में जलन शुरू हो जाती है। विज्ञापनों में आपने अच्छे-भले लोगों को रद्दी वस्तुओं की प्रशंसा करते हुए देखा होगा। वास्तव में कम्पनी उन्हें ये वस्तुएँ मुफ्त देती है इसलिए उन्हें इनमें इतने गुण दिखाई देने लगते हैं।

मुझे काउंटर पर रखी किसी वस्तु पर जब भी 'मुफ्त' लिखा हुआ दिखाई देता है तो जी करता है उसे उठाकर सिर पर पाँव रखकर भाग जाऊँ लेकिन अपनी इस आदिम इच्छा को दबाकर उस वस्तु का दाम पूछता हूँ, जिसके साथ 'वह' मुफ्त मिल रही है। कई बार यह देखकर बड़ी परेशानी होती है कि जो मुफ्त मिल रहा है और जिसके लिए पैसे देने पड़ रहे है, दोनों में कोई तालमेल नहीं है। सोचिए, चाय के साथ रूमाल का क्या मेल है? हाँ, चाय को कपड़ों पर बिखेरकर रुमाल से पोंछने का इरादा हो तो बात अलग है। टूथपेस्ट के साथ नहाने का साबुन देने की क्या तुक है?

शायद कुछ न कुछ तुक होती जरूर है। कई बार यह तुक ज़रा बाद में समझ में आती है। एक बार कपड़े धोनेवाले पाउडर के डिब्बे में से एक हिसाब

लिखनेवाली डायरी निकली। पहले तो समझ में नहीं आया कि कपड़े धोने के पाउडर और डायरी का आखिर क्या सम्बन्ध है? लेकिन पाउडर का प्रयोग करते ही बात समझ में आ गई। उस पाउडर से कपड़े धोने की कोशिश करने के बाद धोबी का हिसाब लिखने के लिए डायरी साथ दी जाती थी।

दाढ़ी

□

कुशल ठारवानी

सर्दी शुरू हो गई थी और सर्दी के साथ ही हमारी सुस्ती भी ज़ोर पकड़ने लगी। सवेरे-सवेरे दाढ़ी बनाना हमें वैसे ही खलने लगा जैसे कि लोगों को इन्कमटैक्स देना खलता है। दाढ़ी बनाने में हमारे सामने कई दिक्कतें आती थीं। कभी दाढ़ी बनाने बैठते तो शेविंग बॉक्स से ब्लेड ही नदारद होता। कभी ब्लेड होता भी तो आधी दाढ़ी बनाने के बाद हमें महसूस होता कि अब उस ब्लेड से पूरी दाढ़ी नहीं बनाई जा सकती और हमारी दाढ़ी भारत सरकार की योजनाओं की तरह अधूरी रह जाती। फिर हम नास्तिक होते हुए भी भगवान् की मूर्ति के आगे जाकर प्रार्थना करते—हे भगवान्, अपने किसी भक्त को भेज जो कि हमारे लिए बाजार से ब्लेड ला सके। किसी ने सच ही कहा है कि मुसीबत के समय ही आदमी को ईश्वर की याद आती है और हम सोचने लगते कि कबीर ने हम-जैसों के लिए ही कहा होगा :

दुख में सुमिरन सब करें, सुख में करे न कोय।
जो सुख में सुमिरन करे, दुःख काहे को होय॥

ऐसे अवसरों पर ईश्वर हमारी अक्सर सुन लेता है और हमें विश्वास हो जाता कि ईश्वर अपने भक्तजनों और नास्तिकों में कोई अन्तर नहीं समझता। हमें ईश्वर की यह समदर्शिता पसन्द आयी लेकिन हम तो इतने आलसी हैं कि ब्लेड खत्म होने पर ईश्वर से रोज़-रोज़ प्रार्थना भी हम से न हुई। तभी दो-चार दिन की छुट्टी आ गई। छुट्टी क्या आयी, हमने दाढ़ी बनाने की भी छुट्टी कर दी। सोचा, जब स्कूल खुलेगा देखा जायेगा, 'अब तो चैन से गुजरती है आक़बत[1] की खुदा जाने'। लेकिन जब 'आक़बत' आयी यानी कि हमारा स्कूल खुला तो हम आलस्य के इतने नज़दीक पहुँच चुके थे कि हमें अपनी दाढ़ी और आलस्य से जुदा होना गवारा न हुआ। इसलिए हमने दाढ़ी को बढ़ने दिया।

हमारी दाढ़ी को बढ़ते देख लोग ऐसे जलने लगे जैसे कि वे किसी की

१. प्रलय का दिन।

तरक्की देखकर जलते है। चारों ओर से हम पर फिकरे कसे जाने लगे। हमारी दाढ़ी ने हमारे साथ कुछ वैसा ही किया जैसा कि महाकवि केशव के साथ उनके श्वेत केशो ने किया। हमारे दु खी हृदय से कविता वरबस फूट पड़ी—

'कुशल' दाढ़ी अस करी, जस अरिहु न कराय।
चन्द्रमुखी मृगलोचनी, गुण्डा कहि-कहि जाय॥

यदि केशवदास इस समय जीवित होते तो हम उन्हें देखकर अपना दु.ख कम कर लेते और वह हमें देखकर। किन्तु आज हम इस निष्ठुर संसार मे अपना दु.ख अकेले ही सह रहे हैं। लोग हमे न जाने क्या-क्या कहने लगे। हमे डाकू, गुण्डा, आवारा, हिप्पी, लफंगा, फिलॉसफर आदि की डिग्रियाँ ऐसे मिलने लगी जैसे कि लोगो को आज 'पद्मश्री' की उपाधि मिल रही है। हमने मन को यह कहकर बहलाना चाहा कि "कुछ तो लोग कहेंगे। लोगों का काम है कहना।" पर ऐसा कब तक करते! आखिर तंग आकर हम आईने के सामने जा खड़े हुए सेल्फ-एनेलिसिस करने। आईने में हमें एक चेहरा नजर आया—परेशान-सा पर भोला-भाला। हमे वह चेहरा देखकर उस पर तरस आने लगा। कुछ देर तक हम ऐसे ही देखते रहे। तभी अचानक ही वह चेहरा गायब हो गया और हमें गुण्डे का चेहरा नजर आने लगा। फिर आईने मे चेहरे बदलते रहे, कैलिडोस्कोप की डिजाइन की तरह। हमें आईने में नजर आने लगे सुकरात, नानक, कबीर, अब्राहम लिंकन, रवीन्द्रनाथ टैगोर, पुरुषोत्तमदास टंडन, विनोबा भावे, डॉक्टर जाकिर हुसैन, जार्ज बर्नार्ड शॉ, अज्ञेय और न जाने कौन-कौन।

हम गहरे सोच में डूब गये। हम सोचने लगे क्या ये सब महान् व्यक्ति डाकू और गुण्डे थे! हमें याद आया कि अब्राहम लिंकन ने दाढ़ी रखना एक छोटी-सी बालिका का सुझाव मानकर शुरू किया। बालिका ने उन्हें पत्र में लिखा था कि यदि वह दाढ़ी रखें तो उनका व्यक्तित्व काफी प्रभावशाली लगेगा क्योकि उनके गाल पिचके हुए थे। लिंकन को उस बालिका का सुझाव पसन्द आया और उन्होंने दाढ़ी बढाई। दाढ़ी बढ़ने के बाद उनका व्यक्तित्व वास्तव मे काफी प्रभावशाली लगने लगा। कुछ लोग भारतीय लोगो से अत्यधिक घृणा करते है। घृणा करने के बहुत से कारणों मे एक कारण यह भी है कि हम भारतीय लोग दूसरो के व्यक्तिगत जीवन मे दखल करते हैं। यदि आपसे ही लोग अत्यधिक व्यक्तिगत प्रश्न करना शुरू करें तो आप भी बोर हो जायेंगे। मुझसे भी लोग इन्कमटैक्स ऑफिसर की तरह प्रश्न करने लगे, "आपने अचानक ही दाढ़ी बढ़ाना शुरू क्यों किया? क्या आप कुछ मनौती कर रहे है—पुत्र पाने की, पुस्तक छपने की, ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त करने की, पद्मश्री पाने की या फिर राष्ट्रीय पुरस्कार पाने की?" हम इतने प्रश्नो से इतने तंग आ गये कि हमने

निश्चय किया इन प्रश्नों को हमेशा-हमेशा के लिए खत्म करना। जब एक सज्जन ने हम से दाढ़ी के बारे में प्रश्न किया तो हम बोले—

"वास्तव में हम एक सर्वे कर रहे हैं।"

"सर्वे ? कैसा सर्वे ?"

"इस सर्वे मे हम यह ज्ञात करेंगे कि इस नगर में मूर्खों की संख्या कितनी है।"

"मूर्खों की संख्या आप कैसे ज्ञात करेंगे ?"

"बड़ा सरल-सा उपाय है। जो भी हमसे यह प्रश्न करता है कि हमने दाढी क्यों रखी, हम उसका नाम तुरन्त मूर्खों की लिस्ट मे लिख लेते है। जब पूरे मूर्खों की···"

वह सज्जन पूरी बात सुने बिना ही ऐसे गायब हुए जैसे कि कर्जदार महाजन को देखकर गायब हो जाता है। जब एक अन्य सज्जन ने इसी प्रकार हमसे सवाल किया तो हमने उत्तर भी सवाल मे इस प्रकार दिया—

"आपने यह साफा क्यों पहना हुआ है ?" प्रश्न का उत्तर प्रश्न में पाकर वह घबराये। फिर कुछ संयत होकर बोले, "यह तो अपनी-अपनी 'लाइकिंग' है।"

"तो अपनी भी 'लाइकिंग' है दाढ़ी बढ़ाना।"

वह अपना-सा मुँह लेकर चले गये।

किन्तु जैसे हमने सबको काटा, पत्नी को नही काटा जा सकता था। हमारी एक वाक्य ने मदद की जो कि हमने किसी पत्रिका में पढा था। इस वाक्य ने रामबाण का काम किया और वह फिर कुछ न बोली। वह वाक्य था, "दाढ़ी तथा मूँछें अच्छी बुद्धि की तरह हैं जो कि मनुष्य को समय के पूर्व नही आती और महिला को बिलकुल ही नही आती।" इसके बाद मुझे किसी भी कठिनाई का सामना नही करना पड़ा और आज भी मेरी दाढ़ी सलामत है।

सालियाँ

□

अरनी रॉबर्ट्स

अगर दुनिया मे मैं (और हो सकता है आप भी) अगर किसी से डरता हूँ तो वे तीन चीजें हैं—पहली हैं श्रीमतीजी, जो जन्म-जन्मान्तर के लिए गले बँध गई हैं; दूसरी हैं सालियाँ यानी उनकी छोटी-बड़ी बहनें और तीसरे हैं मेहमान—जो बेमौसम के बादल की तरह कभी भी बरस पड़ते हैं। श्रीमती जी का केस सबसे पॉवरफुल है—उठते-बैठते, खाते-पीते, हर समय उनकी निरीक्षक गिद्ध-दृष्टि हमारा पीछा इस प्रकार करती है जैसे हम कोई स्मगलर है और वह इंटेलीजेन्स डिपार्टमेंट की कोई सी० आई० डी०। गिद्ध की एक बार ऊँचे आकाश में उड़ते हुए किसी मरे हुए पशु पर नजर न पड़े, सम्भव है—पर हमारी 'वह' यदि दिन मे गिद्ध-दृष्टि रखती हैं तो रात्रि मे उल्लू-दृष्टि—और इन दृष्टियो से मेरी कोई हरकत भला छिपी रह सकती है ? असम्भव।

अब आप स्वयं सोच सकते है कि जब हमारी श्रीमती ही इतनी गजब की होम-इन्टेलीजेन्स डिपार्टमेंट की गिद्ध-दृष्टि-निरीक्षिका हैं तो उनकी बहनें और हमारी सालियाँ कैसी खौफनाक और खतरनाक होंगी। न जाने किस बुद्धिजीवी ने इनका नाम 'सालियाँ' रख दिया वरना मेरे जैसा ऐक्सपीरियेन्स्ड भुक्त-भोगी तो इनका नाम 'बिजलियाँ' रखता। जी हाँ, ठीक ही नही, सेंट-परसेंट ठीक फरमा रहा हूँ—बिजली से भी खतरनाक है ये। बिजली झटका देती है। ये पछाड़ देती है—ऐसी कि हड्डी-पसली एक हो जाय। आपने बिजली के झटके अवश्य ही खाये होंगे, क्योंकि बिजली और साली दो ऐसी चीजें हैं जो कभी नही बख्शती—अगर इनकी पकड़ मे आ जाओ तो। बिजली का झटका आप आधा घंटे में भूल सकते हैं पर सालियों का झटका जिन्दगी-भर याद रहता है—कौन जाने मर जाने के बाद भी याद रहता होगा।

आइये, हमारी सालियो से इन्ट्रोडक्शन हो जाये। हाँ, जरा संभलकर क्योंकि हमारी सालियों की संख्या सुनते ही झटका लगेगा और सोच लीजिए कि जब उनकी संख्या सुनते ही आपको झटका लग सकता है तो हम जो उनके

जीजा है जो अकसर उनके चक्रव्यूहों से घिर जाते हैं और उनके निशानों का टारगेट बनते है तो हमारी क्या स्थिति होती होगी—अनडिफाईनेबल ।

मैं सोचता हूं अभिमन्यु चक्रव्यूह मे घुसना तो कम से कम जानता ही था चाहे निकलना उसे न आता हो । पर भाई साहब, हमारी सालियों का चक्रव्यूह अजीब ही है—उस-जैसे दस अभिमन्यु फँसकर चक्कर खा जायें । यह चक्रव्यूह हमारी ओर स्वतः ही बन जाता है और उस समय हमें अपनी स्थिति ठीक ऐसी मालूम होती है जैसे मकड़ी के जाले में कीड़े की होती है । वहाँ तो कीडे को सिर्फ एक ही मकड़ी से सघर्ष करना होता है पर यहाँ तो हमे कई सालियों से पाला पडता है सीधा ! ठहरिये, जरा मैं पसीना पोंछ लूँ और हाँ, मैं कुछ हाँफने भी लगा हूँ—जरा साँस पर काबू पा लूँ ।

हाँ, तो मैं अपनी सालियो का इन्ट्रोडक्शन दे रहा था । अब तक आप भी जरा संख्या से लगनेवाले झटके के लिए तैयार हो गये होंगे…जी हाँ—हमारी सात सालियाँ है—पूरी सात, एक भी कम नही । लगा न आपके झटका ! खैर, ये झटके तो लगते ही रहते है, हमारे लिए इनकी कोई इम्पोर्टेन्स नहीं रह गई है । इन झटकों के अलावा दिल के दौरे पडते है और साथ ही मुँह की खानी पड़ती है । किस्मत की मार खानी पड़ती है, और जाने क्या-क्या खाना पडता है ।

हमारी सबसे बड़ी साली का नाम है कुमारी फूलकुमारी और उनका वजन दो मन के लगभग है । छोटी-मोटी चारपाई और साधारण कुर्सी उनका भार वहन करने में अपने आपको असमर्थ पाती हैं । वजन तोलनेवाली मशीन पर उनका वजन तोलने के बाद 'आउट ऑफ ऑर्डर' की तख्ती लगा दी जाती है । इसीलिए वजन तोलनेवाले उनसे कुछ चार्ज करने के बजाय उनको चार्ज देना पसंद करते हैं और कहते सुनाई पड़ते है, 'बहन जी, जरा कृपा करना गरीब पर… और इस मशीन पर…' फूलकुमारी की सबसे प्रिय हॉबी है पकौड़े, कचौड़ी और गोल-गप्पे खाना । छोटा-मोटा खोमचा तो देखते-देखते ही खाली हो जाता है । वैसे उनकी सेहत का राज़ ही गोल-गप्पे हैं ।

हमारी दूसरी साली हैं कुमारी रूपवती । बस तवे के रंग से बहुत अधिक नही, थोड़ी-सी ही अधिक हैं—यों समझिये उन्नीस-बीस का अन्तर है । रंग पक्का है । कुमारी रूपवती से जब भी मिलना चाहें वह ड्रेसिंग टेबुल के सामने अपनी अल्हड़ जवानी को आईने में निहारती या सौन्दर्य निखारने का कोई न कोई नुस्खा पढती या तैयार करती पायेंगी। महीने में तीन-चार दर्पण तोड़ देना तो उनके लिए मामूली बात है । पाउडर और क्रीम उनके लिए थोक से आता है । जब-जब अपनी शक्ल निहारते हुए हाथ से गिरकर दर्पण टूटा है, हमने आह भरते हुए कहा है—"कमबख्त दर्पण भी सौन्दर्य देखकर जल गया ।" और इस फिकरे पर वह ऐसे शरमाई हैं जैसे सचमुच यही बात रही हो ।

हमारी तीसरे नम्बर की साली साहिबा का नाम है कुमारी शांति। कुमारी शांति और हमारी श्रीमती जी की नेचर मेल खाती है। ये साली साहिबा कभी शांत नहीं रहतीं। विविध-भारती भी चौबीस घंटों में बारह घंटे तो खामोश रहता ही होगा पर शांतिदेवी का लाउडस्पीकर सुबह सात बजे से जो चलता है तो रात के ग्यारह बजे ही उसका स्वीच ऑफ होता है। कितनी ग़ज़ब की सर्विस है! इन साली साहिबा को हम *'संवाददाता'* कहते हैं। हमारा ख्याल है 'स्टेट्समैन', 'हिन्दुस्तान टाइम्स,' 'टाइम्स ऑफ इंडिया' और 'इंडियन एक्सप्रेस' के संवाददाताओं ने तो अपने-अपने क्षेत्र निर्धारित कर रखे हैं, पर कुमारी शांतिदेवी तो हर कूँचे और गली में होनेवाली वारदातों और घटनाओं का पूरा-पूरा रिकार्ड रखती है। मसलन, कौन किससे प्रेम कर रहा है, किस सास-बहू में चल रही है, किस की बहू किसके मर्द से आँखें लड़ाती है, कौन बदचलन है, किसके यहाँ बच्चा होनेवाला है, कौन मर गया और कौन पैदा हो गया—एक-एक खबर इस ब्यूरो से प्राप्त की जा सकती है।

चौथे नम्बर की साली साहिबा हैं—कुमारी रागिनीदेवी। खुदा जाने किस कमबख्त ने उनके राग की प्रशंसा कर दी थी, तभी से उन पर गाने-बजाने का भूत सवार रहता है। एक कमरे में 'संवाददाता' साली अपने पुराण सुनाती हैं तो दूसरे कमरे में रागिनीदेवी का गर्दभ-आलाप चलता है। क्या आवाज़ है साहब, विरहा गाते समय तो फूट-फूटकर व चीख-चीख रो उठती हैं—और इस आलाप को एक किलोमीटर दूर तक आसानी से सुना जा सकता है। यह तो ठीक है कि हमारी ससुराल के पास में कहीं कोई कुम्हार नहीं रहता वरना रोज़ ही आफत रहती कि···समझ गये होंगे आप। हर माह रागिनीदेवी के साज सुधरकर आते रहते हैं। सितार-वॉयलिन के तार तोड़ने में उनकी निपुणता देखते बनती है। कई बार पतले तार का कुछ काम पड़ता है घर में तो वह झट से सितार में से तोड़ लेती हैं। इसको कहते हैं सूझ-बूझ। मज़ा तो उस दिन रहा था जब उनके तबले पर फूलकुमारी ग़लती से उसे स्टूल समझकर बैठ गई थी।

हमारी तीन सालियाँ छोटी हैं पर क्वालिफिकेशन्स उनमें भी कम नहीं हैं।

पाँचवीं नम्बर की साली साहिबा को गुड़िया बनाने का बेहद शौक है। कई बार वह अपने इस शौक के लिए काफी बलिदान कर डालती है। अपनी नई फ्राकों, नये दुपट्टों आदि का उपयोग *गुड़ियों की साड़ी-ब्लाउजों में* कर डालती है। हर महीने फिर उनकी गुड़िया की शादी···यानी हमारे दस रुपयों का खून।

छठी नम्बर की साली को रोना बहुत प्रिय है। हँसना उनके लिए महज़ एक मूर्खता है। इतना कमाल का रोती हैं कि बस अच्छे-अच्छे चुप करानेवाले स्पेशलिस्ट भी सिर पर हाथ धरकर रह जाते हैं। यदि उन्हें हम एक टॉफी देकर

चुप कराना चाहें तो वह दूने जोर से रोने लगती हैं, दो टॉफी दें तो चौगुने वेग से रोने लगती हैं···और यह तीव्रता हर नई टॉफी के बाद बढ़ती जाती है और बारह तक आकर नॉर्मल होती है।

हमारी अंतिम साली को देश की मिट्टी से बहुत प्यार है। मिट्टी खाना प्रिय शौक है उनका। आप चाहे तो रसगुल्ले, टॉफियाँ, गोलियाँ, खिलौने, लड्डू—कुछ भी दें दे। दुनिया की कोई भी चीज लाकर दे दे पर वह कुछ नहीं छुएँगी··· उनकी प्रिय वस्तु तो मिट्टी है। जिनकी जीर्ण-शीर्ण काया का राज है ताजी मिट्टी का सेवन, यदि उनको इसको खाने से रोका जाए तो वह नम्बर छ को पूर्ण सहयोग देने लगती है रोने मे।···अच्छा साहब, इजाजत दें···तैयारी करनी है··· कल 'उनको' मायके और हमें ससुराल जाना है। ईश्वर से हमारे लिए प्रार्थना कीजिए।

थाने से बुलावा



रघुनाथ 'चित्रेश'

मैं अपने गाँव, परिवार और घर से डेढ़ सौ किलोमीटर दूर एक गाँव में अपने किराये के मकान के बाहर दरवाजे पर खड़ा था। अन्दर किताब पढ़ते-पढ़ते सुस्ती-सी छाने लगी थी। सोचा, जरा बाहर खुली हवा में ताजा हो लूँ।

मैंने देखा, थोड़ी ही दूर पर मि० खान, जो मेरे साथ ही इतिहास के वरिष्ठ अध्यापक हैं तथा एक सिपाही साथ-साथ चले आ रहे हैं। मैंने सुना मि० खान ने उस सिपाही से कहा, "ये ही हैं वह जिनके बारे में तुम पूछ रहे थे।" और मेरी ओर इशारा कर दिया।

मि० खान के इस सम्बोधन से मेरा कलेजा धक् से रह गया, आखिर यह सिपाही मुझे क्यों पूछ रहा था। मैं किसी अप्रत्याशित आशंका से घबरा गया।

मैंने एक सरसरी निगाह अपने आसपास चारों ओर घुमाई। मैंने देखा मुहल्ले की कई औरतें जो अभी-अभी अपनी बातों में मशगूल थीं, अनायास कभी मुझे और कभी उस सिपाही को बड़े आश्चर्य से देख रही थीं।

वे दोनों मेरे नजदीक आ चुके थे। मि० खान ने कहा, "यह तुम्हें स्कूल में ढूँढ रहा था पर मैं जानता था, साढ़े पाँच बज चुके हैं, तुम स्कूल से जा चुके हो। अत. मैंने इसे घर के लिए कह दिया था। यह घर नहीं जानता था अतः मुझे आना पड़ा।"

मैं दोनों की ओर देखता रहा। सिपाही ने पूछा, "क्या आपका ही नाम चेतन है ?"

मेरा कलेजा मुँह को आ गया। मेरी सारी चेतना लुप्त होती-सी प्रतीत हुई और एकबारगी मैंने अन्दर-ही-अन्दर अपने जीवन के सम्पूर्ण अतीत को कुरेद डाला पर कहीं कोई ऐसी बात या घटना याद नहीं आयी जिससे पुलिस मेरे बारे में छानबीन करे। मेरे मुँह से बोल नहीं निकल रहा था। वह मेरा मुँह ताक रहा था। मैं नहीं चाहता था कि कोई ऐसी-वैसी बात बाहर कह दे नहीं तो

मुहल्ले को ये औरतें नमक-मिर्च लगाकर बात का बतंगड़ बना देंगी और आसमान सिर पर उठा लेंगी।

मैंने उसके प्रश्न का जवाब देने की बजाय कहा—"आप लोग अन्दर आइये ना। मि० खान, आपको बड़ा कष्ट हुआ।" और मैं बिना उनकी प्रतीक्षा किये स्वयं ही अन्दर की ओर चल दिया जिससे उन्हें भी विवश होकर अन्दर आना पड़ा।

मैंने उन्हें अपने कमरे में बैठाया। मेरा दिल बैठा जा रहा था, फिर भी 'आपड़े का क्या मोल'। साहस करके पूछा—

"हाँ, तो अब कहिये आप। मेरा ही नाम चेतन है। क्या बात है?"

आप ही यहाँ चित्रकला के वरिष्ठ अध्यापक हैं?" उसने पूछा। मैंने कहा, "हाँ।" तो वह बोला—

"जी, बात यह है कि मैं सुबह से ही आपकी तलाश में हूँ। मैंने पहले प्राइमरी स्कूल में, फिर मिडिल स्कूल में—सब जगह पूछा। फिर बाद में पता लगा कि आप तो हायर सेकण्डरी स्कूल में हैं। अतः मैं वहाँ पहुँच गया। वहाँ से पता लगा कि आप वहाँ से निकल चुके हैं तो मैं इन साहब को लेकर यहाँ आया हूँ।"

वह कहे जा रहा था और मुझ पर एक अनजाना भय व्याप्त होता जा रहा था।

उसने फिर कहा—"मुझे सी. आई. साहब ने भेजा है, आपको थाने में बुलाया है।"

उसका अन्तिम वाक्य सुनते ही मेरे रोंगटे खड़े हो गये। उसका एक-एक शब्द हथौड़े की तरह मेरे दिल-ओ-दिमाग पर चोट पहुँचा रहा था। मेरा सारा शरीर पसीने से तर-बतर हो गया था। मैंने मि० खान की तरफ देखा लेकिन वे हमारी बातों की ओर ध्यान दिये बिना ही हमेशा की तरह अपनी ही धुन में बैठे आलपिन से अपने दाँत कुरेद रहे थे।

मैंने हिम्मत करके पूछा—"आखिर बात क्या है? मुझे वहाँ क्यों बुलाया है?"

उसने कहा—"यह तो वहाँ चलकर ही पता लगेगा, साहब। मैं क्या बता सकता हूँ इस बारे में। हाँ, इतना जरूर कह सकता हूँ कि हेड ऑफिस से डाक में एक बहुत बड़ा लिफाफा आया था। उसके बाद कागजात देखकर साहब कुछ सोचने लगे, और मुझे आपको बुलाने भेजा है। शायद कुछ मामला है।"

मैंने पूछा, "क्या साथ चलना जरूरी है? मैं कुछ देर बाद वहाँ पहुँच जाऊँ तो कैसा रहे?"

पर सिपाही तो सिपाही ही है। उसने तपाक से कह दिया, "नहीं साहब, आपको अभी मेरे साथ ही चलना पड़ेगा। मैं सुबह से आपको ढूंढ रहा हूँ। अब भी आपको लेकर नहीं पहुँचा तो साहब मुझ पर बरस पड़ेंगे और मेरी छुट्टी कर देंगे।"

मेरा बनियान पसीने से भीग गया था। मेरा मुँह फक्क हो गया था। मैं सोच नहीं पा रहा था आखिर बात क्या हो सकती है। मैंने आज तक कोई ऐसा काम किया नहीं, जिससे कि पुलिस तक की नौबत पेश आए। क्या मेरे वहाँ घर पर कोई घटना घट गई या किसी ने ईर्ष्यावश दुश्मनी से कोई झूठा आरोप लगाकर मुझे फँसाना चाहा है—आखिर बात क्या है, मैं अपने दिमाग पर काफी जोर लगा रहा था पर मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा था।

खैर, जो होगा देखा जायेगा। मैंने हताश होकर कपड़े पहने और उसके साथ हो लिया।

मेरे यहाँ पुलिस का सिपाही देखकर मेरी मकान-मालकिन भी बाहर बरामदे में आ गई थी। मैंने चलते वक्त उसे देखा। उसकी आँखों में हजारों प्रश्न झलक रहे थे, मगर वह डर के कारण पूछ नहीं पा रही थी। मैं आगे बढ़ गया।

बाहर आते ही मि० खान ने कहा, "अच्छा तो अब मैं तो चलता हूँ।"

और वह बिना हमारे उत्तर की प्रतीक्षा किये ही दूसरी ओर चल दिया। मैं शून्य निगाह से उस ओर देखता ही रह गया।

सिपाही जिसके हाथ में एक काला डण्डा था, अपनी तिरछी टोपी पहने बड़ी शान से मेरे आगे-आगे चलरहा था, मैं उसके पीछे-पीछे नीची निगाह किये अपने-आप में सिमटा-सा चला जा रहा था।

मैं छिपी-छिपी निगाह से देख रहा था कि सारे मुहल्ले की औरतें और बच्चे अपने-अपने घरों के बाहर निकल आये हैं और मुझे ठीक उसी तरह देख रहे हैं जैसे कोई बलि का बकरा बलि चढ़ाने हेतु देवी के मन्दिर की ओर ले जाया जा रहा हो।

कुछ दूर दो-तीन औरतें खुसुर-फुसुर कर रही थीं। वे बात कम और इशारे ज्यादा कर रही थीं। मुझे सतरह आना विश्वास था कि वे मेरे ही बारे में बातें कर रही थीं। मैं शर्म से गड़ा जा रहा था, मानो मुझ पर सौ घड़े पानी उँड़ेल दिया हो। मैं सबसे निगाह चुराता सिपाही के पीछे चला जा रहा था।

उस वक्त मेरी हालत उस चोर या हत्यारे से भी बदतर थी जिसने हजारों की चोरी की हो या किसी की हत्या की हो। क्योंकि उसने तो यह सब किया है और उसे अपने कृत्य पर गुमान हो सकता है अतः वह अपना सीना

तानकर बेधड़क चल सकता है। पर मैं ? मैंने तो कुछ भी नहीं किया। मैं किस बात पर गुमान करूं या पश्चाताप। न चोरी, न डाका, न हत्या, न गबन—कुछ भी तो नहीं ! मैं कैसे अपने दिल को समझाता कि मुझे थाने में क्यों बुलाया गया है। मैं आज तक इस गाँव मे, स्कूल मे, मुहल्ले में एक सम्माननीय और सभ्य व्यक्ति के रूप में जाना जाता हूँ। मैंने कभी अपने जीवन मे भी पुलिस-थाना नही देखा था। मैं महसूस कर रहा था, कई लोगों की आँखें मुझे घूर रही हैं। वे हजारों प्रश्न करने को आमादा हैं, पर कोई डर से, कोई सम्मान से, कोई लिहाज से, कोई शर्म से, मुझसे कुछ भी नही पूछ पा रहा था।

सिपाही आगे-आगे, मैं पीछे-पीछे चला जा रहा था। न वह मुझसे बात कर रहा था, न मैं उससे।

मेरे मस्तिष्क मे उथल-पुथल मच रही थी। विचारो में ज्वार-भाटे आ रहे थे। मेरे मानस में तरह-तरह के विचार पानी के बबूले की तरह उठते और विलीन होते जा रहे थे। मुझे ख़याल आया, हो सकता है उस दिन एक पुलिसवाले ने एक खोमचेवाले का खोमचा सिर्फ इसलिए उलट दिया था कि बेचारा रास्ते मे खड़ा रहकर मुझे खुल्ले पैसे दे रहा था। सच यह था कि पुलिसवाले को उसकी जेब-खर्ची नही मिलने से खोमचा उलट देने के कारण पुलिसवाले और उसके बीच कुछ कहा-सुनी हो गई थी। शायद वह बात आगे बढ गई हो और मुझे भी उसमें फँसा दिया गया हो। नही-नही ! यह नही हो सकता है ! याद आया, उस दिन उस मजदूर ने उस सेठ का गला इसलिए पकड़ लिया था कि वह सेठ उसे ठहराये अनुसार मजदूरी के पैसे नही दे रहा था और ऊपर से गालियाँ भी दे रहा था। मजदूर ने सेठ को धराशायी कर दिया। सेठ ने पैसे के बल पर पुलिस को बुला लिया और पुलिस बेचारे मजदूर को पकड़कर ले गई। मैं उस वक्त वहीं खड़ा यह दृश्य देख रहा था क्योकि मैं उसकी दूकान पर सामान खरीदने गया था। हो सकता है उस सेठ ने गवाह मे मेरा नाम लिखा दिया हो।

नही-नही ! यह भी नही हो सकता। ओह, याद आया ! जरूर वह बात होगी—उस दिन उस लड़की को उसकी ससुराल से ठोक-पीटकर आधी रात को घर से धक्के मारकर बाहर निकाल दिया था—सिर्फ इस बात के लिए कि उसका बाप गरीब था और उसने लड़के को दहेज में घड़ी और ट्रांजिस्टर नहीं दिया था। और सास को रेशमी जोड़ा नही पहनाया था। और मैंने एक पड़ोसी के नाते उसे स्टेशन तक ले जाकर टिकट दिलाकर उसके गाँव उसके बाप के घर पहुंचा दी।

पर उसमें मुझे डरने की क्या आवश्यकता है, मैंने कोई पाप थोड़े ही किया है।

एक बहन को दर-दर की ठोकरें खाने की बजाय बाप के घर ही तो पहुंचाया है। कोई उसका अपहरण तो किया नही ! इस तरह न जाने अतीत की कितनी घटनाएँ मेरे मानस-पटल पर उभरती और मिटती चली जा रही थी पर कही मुझे वह सम्बन्ध नही मिल रहा था, जो सत्य हो।

इसी उधेड़-बुन मे एक के ऊपर दूसरे विचारों को लादते अपने में खोया मैं चला जा रहा था। मुझे भान तब हुआ जब उस सिपाही ने अपने दोनो बूटो की ऐड़ी को मिलाकर 'खट्' से सेल्यूट मारा।

मैंने देखा सामने कुर्सी पर सी० आई० साहब बैठे हुए हैं। मुझे देखते ही वे उठकर खड़े हो गये और मेरी ओर हाथ बढ़ाते हुए बोले—

"हलो, आर्टिस्ट ! मिस्टर चेतन ! मैं आप ही का इन्तजार कर रहा था। मेरा आपसे पहले परिचय नही हो पाया था, पर मैंने आपकी तारीफ सुनी है।"

मैंने भी सकपकाते हुए अपना हाथ उनकी तरफ बढ़ा दिया। हाथ मिले। मुझे उन्होने कुर्सी पर बैठने को कहा और घंटी बजाई। फिर बड़े रोब से कहा—

"रामसिंह, जल्दी से दो चाय ले आओ। चाय अच्छी और कड़क हो।"

मैं सहमा-सहमा-सा सामने कुर्सी पर बैठ गया। तब उन्होंने कहना शुरू किया—

"भई, माफ़ करना। मैंने सुना है आप अच्छे आर्टिस्ट हो। बात ऐसी है कि कल हमारे थाने का निरीक्षण है और मैं चाहता हूँ कि कुछ अच्छे सदाचारयुक्त शिक्षाप्रद वाक्य लिखे हुए चार्ट आप हमे बना दे, जो अपराधियों को सन्मार्ग पर लाने में प्रेरणा दे सकें तथा कुछ में पुलिस के कर्तव्य के बारे में लिखा हो तो बड़ी कृपा होगी।"

मैं हतप्रभ-सा देखता रह गया और जोर से अपने-आप हँस पड़ा। सी० आई० साहब मुझे देखते रह गये। मैंने जब अपनी सारी मन.स्थिति को बताया तो वे भी हँस-हँसकर लोट-पोट हो गये।

जब मैं वापस घर आया तो लोगो की भीड़ लग गई और उन्होने मुझसे हजारों प्रश्न पूछ डाले।

अब आप ही कहिये, मैं क्या जवाब देता उन्हें !

कूबड़ी झक

▢

विश्वम्भरप्रसाद शर्मा 'विद्यार्थी'

कूबड़ी झक गलतियों का गट्ठर ढो-ढोकर, अकड़कर-मकड़कर चल रही थी और दिखा रही थी कि मेरे कूब नहीं है। कूबी छिपाए अपनी कूब पर छिपाने से चीज छिपती नहीं। शक की झक उसको सूँघकर बिना कुदाली सौ हाथ जमीन के नीचे से खींचकर निकाल लाती है।

आखिर असलियत निकल आती है चाहे कितना ही आडम्बर का लट्ठ मारकर उसको दबाओ, साली दस्त बनकर निकल आती है। यह सचफच सुनकर पास खड़े हमारे मित्र महोदय सिकुड़ रहे थे। मैंने हंसकर कहा—"कहो! भाई साहब, दीपक तले अँधेरा कैसे ?"

वे बोले, "समझा नहीं।" "अजी ! ऐसी शीतल चाँदनी में धूप का ऐनक कैसे ? कहीं बल्ब तो ऑफ नहीं है ?" पास में कुछ बदतमीज लड़कियाँ अपने फैशनेबुल अधनंगे कपड़ों में फिस-फिस कर हँस रही थी। मैंने घूरकर कहा, "आपको क्या तकलीफ है ?" तड़ातड़ बोलीं, "जो आपको वही हमें।" पास में मेरा एक समझदार मित्र था। उसने कहा, "अबे ! किन छिनाल रौंड़ों से सिर-फोड़ी करता है ! सारा सिर मथकर घी निकाल देगी। ऊपर से पड़वायेंगी डण्डे। खिंचवा देंगी सौ तार सारे बदन पर गाता जायेगा तू सितार बनकर। चल, हट !" वे खिलखिला रही थी।

काना मित्र अपनी मखौल देखकर होंठ चाट रहा था। मैंने ताजा व्यंग्य कसकर कहा, "कुछ लोग चीजों का उपयोग करते है स्वास्थ्य की सुरक्षा के लिए, कुछ करते हैं अपने खराब माल पर कुबड़ी झक का फैशनेबुल लेबल लगाकर बढ़िया दिखाने के लिए, पर कुछ तो उल्लू चरख करते है झक-झककर पूरी झक।"

आगे चलने पर कुछ जवान लड़के मुँह हिला-हिलाकर अधमरी बातें कर रहे थे। हँसी में लोट-पोट हो लटक रहे थे। हावभाव उनके बहरे थे, सब काम अधूरे थे। कुछ के अर्धकटे वस्त्र कान-कटे कुत्ते की तरह भौंक रहे थे। किसी

की टाँगों से उनके पैंट ऐसे चिपके पड़े थे जैसे घावों पर पट्टी। तीखे मुँह के जूते चल रहे थे पिचक-पिचककर। सिगार के धुएँ से छल्ले बनाते हुए चले जा रहे थे फैशन के गुलाम।

मैं शहर की नाक के एक छोर मे घुसकर दूसरे छोर में जा रहा था। इतने मे मेरा एक आधुनिक मित्र मिला और बोला, "कहो! कैसा रहा आगरा का घूमना?" मैंने कहा, "बड़ा अजीब।" "कैसे?" "मेरी अक्ल की तो ऐसी आरती उतरी कि एक जगह तो चढावा लेते-लेते बचा।" इतने मे हमारे मित्र का घर आ गया। अन्दर पहुँचते-पहुँचते बज गए बारह।

कमरे मे सिर-कटे हिरन, मरे चीते, कटी घास के गुलदस्ते दीवारों पर कान पकडकर लटक रहे थे। मैंने कहा, "अरे! तुमने अपने घर मे अजायबघर खोल रखा है क्या?" वार्तालाप मे और भोजन-कार्यक्रम मे ही सूर्यास्त हो गया। आराम करने के लिए एकाएक मैं खाट पर लेटा ही था कि टन-टन की घंटी बजी। मैं चौंका। अन्दर से आवाज़ आयी, बल्ब ने आँखें खोली और एक औरत बोली, "हलो! अच्छा सुबह आ रही हूँ।" बल्ब के तमाचा जड़ते ही बल्ब सो गया। वह चल दी। मैं खाट पर कभी चढ़ रहा था, कभी उतर रहा था। दर-असल मे मैं तो पड़ा ही था।

सुबह उठते ही मैंने राम-राम करना शुरू किया तो एक बच्चे ने मुझे डराते हुए कहा, "डोन्ट डिस्टर्ब।" मैं उचक देखने लगा। इतने मे मेरा मित्र आया और बोला, "बेड-टी लो, लैट्रिन जाओ, टूथपेस्ट करो। फिर हमें टूर पर चलना है।" मैं हैरान यह सब सुनकर। खैर।

बच्चे अपने बक्स खोल-खोलकर तरह-तरह के कपड़े निकाल रहे थे और कह रहे थे कि पापाजी, कपड़े फैशन के नही। लडकियाँ तरह-तरह के केश-विन्यास करके आयी।

भाई ने तो कान-कटे कपड़े पहने। मुँह पिचकाकर, गला भीचकर पंचम स्वर मे आलाप किया और बोला, "देखो! फैशन में रहना सीखो नही तो लोग बुरा समझेंगे। तुम्हें लोग पूछें तो सच मत कहना। अपने रोबवाली बात कहना, उनकी हँसी उड़ाना, आते वक्त टा-टा करना।" उन्होने मुझे कहा, "भाई! बाहर बैठो। अभी आते है।" देखो आधुनिक व्यवहार का फैशन।

मैं सोच रहा था कि उस रंडी-मंडी कूबडी ने केवल राम का घर बिगाड़ा था। आज यह कलयुग में सारे देश को बिगाड़ देगी। मैंने अपने राम से कहा कि इस कूबडी भक ने तो सबके धर्म-कर्म नष्ट-भ्रष्ट कर दिये।

मित्र बनाना फैशन, कपडे फैशन, चाल फैशन, बात फैशन और इस फैशन की भी फैशन साली कलमुँही कूबड़ी भक। मैं बिना फैशन का आदमी पाँच सौ

साल पीछे का नमूना अपने गाँव के झोपड़ में रहता हूँ। लट्ठ लेकर कूबडी फैशन के बारे में लोगों को समझाता हूँ कि यह डायन सबके घर बिगाड़ देगी।

एक दिन यह भी सचमुच एक लकड़ी पर चढ़कर मेरे झोंपडे में आ गई। मैंने चिढ़कर कहा, "फैंका ! बहन, राम-राम।" उसने कहा, "तुमको मेरा परिचय किसने करवाया ?" मैं बोला, "राँड, तेरी सूरत कह रही है। परिचय की जरूरत ही क्या है ?"

मेरे मरते-मरते यह नकटी सब जगह अपनी कुचालों से लोगों को वेडौल, नंगे बदन, बदसूरत बनाकर वेइज्जत करवा देगी। मैंने तो भगवान से मौत माँगी। मुझे तो मिल गई। मेरी खाट के पास बैठे मेरे बूढे साथी कह रहे थे कि इसकी तो सुधर गई, अपना क्या होगा ?

भेजा-भक्षण

□

जगदीश सुदामा

लोग भेजा खाते हैं और बड़े चाव से खाते है, जैसे हमारा भेजा कोई भेजा न हुआ, प्लेट-भर नाश्ता हुआ। वैसे लोग भेजे का कई तरह से उपयोग करते है (उपयोग शब्द यहाँ जम नही रहा है, खैर···)। उदाहरण के लिए—लोग भेजा चाटते है जैसे उनके लिए हमारा भेजा कोई अवलेह हो।

ऐसे ही हमारे एक परम स्नेही मित्र हैं, जिनको अब मैं भेजा-भक्षक कह दूँ तो ज्यादा उपयुक्त होगा। मुझे कई भेजा-भक्षको के सान्निध्य का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, लेकिन उनकी सानी का एक भी नही पाया। वाह, क्या सफाई से भेजा-भक्षण करते है कि उनको देखते ही जी चाहने लगता है—एक अच्छी-सी तश्तरी में अपने भेजे को रखकर उनसे अनुनय-विनय की जाय—हे प्रभो! आप प्रेम से हमारा भेजा-भक्षण कीजिये।

भेजा-भक्षण भी एक कला है। कई लोग तो भेजे को बहुत ही बेरहमी से खाने लगते हैं। उन्हे यह भी ज्ञान नही होता कि भेजा-भक्षण किस समय किया जाना चाहिए, किस प्रकार का भेजा भक्षण के उपयुक्त होता है।

आप शायद कहेंगे—'हमारा भेजा मत खाइये।' लेकिन ऐसा कहकर आप एक शाश्वत सत्य से मुँह नही फेर सकते। रहा सवाल आपका भेजा खाने का, मैं नही खाऊँगा तो कोई दूसरा खायेगा। (कृपा कर गृहिणियाँ 'कोई दूसरे' का अर्थ अपने से न ले बैठें)।

कुछ लोग 'बफर डिनर' की तरह, दूसरो के भेजे का उपभोग करते है। सच पूछो तो ऐसे लोग बहुत 'बोर क्रिस्म' के हुआ करते है। भेजे जैसी सामग्री का उपभोग तो बहुत ही इतमीनान से होना चाहिए।

हाँ, तो मैं कह रहा था—हमारे परम स्नेही मित्र श्री भेजा-भक्षक इस विषय के अद्वितीय ज्ञाता हैं। सही मायने में वे ही एकमात्र सर्वगुणोपयोगी भेजे के पारखी हैं। वे रास्ते चलते भेजा नही खाते, और न ही बाजार में कहीं खड़े-खड़े ही भेजा खाते हैं। वे हमेशा 'फ्रेश' भेजे का उपभोग करने मे ही विश्वास करते हैं। दिनभर की थकावट और परेशानी से शाम को भेजा जब तरावट

प्राप्त कर लेता है, तब वे महाशय जी मुहल्ले के किसी चबूतरे पर आराम से बैठकर हमारे भेजे को खाएँगे। (फिर भले ही हम उनको अपना भेजा खिलाते-खिलाते वहीं निढाल हो जाएँ।) जिस प्रकार तर माल सुस्वादु होता है, उसी प्रकार तर भेजा ही उनको अभीष्ट है।

आपने कभी सोचा ही नहीं होगा कि किसी का भेजा खाना कितना दुष्कर कार्य है। भेजा खाने के लिए सबसे पहले भेजामारी करनी पड़ती है, अर्थात् भेजा-भक्षक हमारे भेजे को सबसे पहले डाक्टरी भाषा में 'शून्य' कर देते हैं। तदुपरान्त वे भेजापच्ची करते है, अर्थात् हमारा भेजा पचाते हैं। संस्कृत में पच्-धातु पकाने के अर्थ में काम आता है, अर्थात् वे हमारे भेजे को अच्छी तरह पकाते हैं। जब हमारा भेजा 'पच्' जाता है, तब कहीं जाकर भेजा-भक्षण होता है।

आप कहेंगे—आखिर यह भेजा-भक्षण कब तक? हमारे परम स्नेही मित्र का कहना है कि जब तक सितार के कसे हुए तार की तरह सामनेवाले का भेजा, तुन्-तुन्-तुन् नहीं बोलने लग जाए, तब तक भेजा-भक्षण होता रहना चाहिए।

आप सोचते होंगे कि मैं आपका भेजा चाट रहा हूँ। वस्तुतः भेजा चाटने की क्रिया भेजा-भक्षण के बाद ही होती है। जिस प्रकार भाग पीने वाले रबड़ी खाने के पश्चात् दोना चाटते हैं, उसी प्रकार भेजा-भक्षक भी भेजा खाने के बाद ही हमारा भेजा चाटते है।

हमारे कई शुभचिन्तक मित्र, हमारा भेजा-भक्षण होता हुआ देखकर करुणार्द्र हो आते हैं *(आपको भी शायद दया आ गई होगी)*। लेकिन सच मानिये, हमें तो अपने भेजे पर नाज है कि एक इण्टरनेशनल ख्याति-प्राप्त भेजा-भक्षक हमारे भेजे का भक्षण कर रहे है। जरा सोचिये तो, आज किसको इतनी फुरसत है कि वह हमारा भेजा खाए। कई बार तो हमें ही भेजा-भक्षको की तलाश करनी पड़ती है। अपना भेजा-भक्षण कराने के लिए चाय-पान इत्यादि से उनका समुचित सत्कार करना पड़ता है, तब कहीं जाकर वे हमारा भेजा-भक्षण करने के 'मूड' में आते है।

आपने कभी भेजा-भक्षको की अनौपचारिक बैठक में भाग नहीं लिया होगा (भला आपके ऐसे भाग्य कहाँ?)। दो-चार भेजा-भक्षक किसी होटल में बैठकर आपस में एक-दूसरे का भेजा-भक्षण करने लगे कि आसपास के लोगों (ग्राहको) पर भेजामारी का प्रभाव शुरू हो जाता है। इसके बाद धीरे-धीरे स्वतः ही उनका भेजा पचने (पकने) लगता है, और जब श्रोताओं का भेजा पच जाता है तो वे लोग आपस में भेजा-भक्षण छोड़कर, आस-पास पचे हुए भेजों का भक्षण शुरू कर देते हैं।

ये लोग 'मिरस' भेजे खाने के बड़े शौकीन होते हैं। कई बार तो विश्व-विश्रुत भेजा-भक्षकों को एतदर्थ आमन्त्रित किया जाता है। हजारों पके, अधपके और कच्चे भेजों का जब ये मिला-जुला भक्षण शुरू करते हैं, तब इन्हें हर पाँच मिनट बाद पानी की 'डिमाण्ड' रहती है।

भेजा-भक्षण का इतिहास कितना प्राचीन है, यह तो अभी शोधगम्य है, किन्तु यह निर्विवाद है कि स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् इस देश में भेजा-भक्षण-कला का जितना विकास हुआ है उतना शायद ही किसी देश में हुआ हो।

आज, जबकि सांस्कृतिक दृष्टि से इस कला का महत्व बढ़ता जा रहा है, हम सब का यह परम पुनीत कर्तव्य हो जाता है कि हम इस कला के विकास में अपना पूर्ण योगदान दें। जहाँ जो भी मिले उसका भेजा खाओ। आपका हाकिम यदि आपसे कहे कि भेजा मत खाओ, तो आप तुरन्त हड़ताल कर दें, और फिर नारे लगायें—'भेजा खाना हमारा मूलभूत अधिकार है।'

संस्कृति का नया आयाम

□
हरगोविन्द गुप्त

फैशन के इस युग में खुशामद, चाटुकारिता जैसे शब्द पुराने पड़ चुके हैं। 'चमचागिरी' शब्द में जो 'ग्लैमर' है, वह इन शब्दों में कहाँ! चमचागिरी बड़ी तेजी से सफल जीवन का पर्याय बनती जा रही है। जी हाँ, चमचागिरी सीखिये, यदि आपको जीवन-रूपी 'रेस' में निरन्तर आगे बढ़ते रहना है।

यों यह कला नयी नही है। प्राचीन काल मे इसे खुशामद एवं चाटुकारिता की संज्ञा से अभिहित किया जाता था। राजदरबारो के खुशामदी दरबारी और चाटुकार कवि इस कला के चमत्कारिक प्रभाव से भली-भाँति परिचित थे। आप ऐसे कवियों की काव्य-रचनाओं के पृष्ठ पलटते जाइये, उनकी यह कला उनकी रचनाओं में मूर्तिमन्त होती नजर आयेगी। राजा अथवा सम्राट् परले सिरे का मूर्ख ही क्यों न हो, किन्तु इन कवियो की लेखनी की कृपा से वह समस्त गुणों एवं कलाओं का सागर बन गया।

चमचागिरी कलियुग की कामधेनु से कम नही है। आप चमचागिरी से होनेवाले लाभों की चिन्ता मत कीजिए। आपका कार्य है—श्रद्धा एवं भक्ति-भाव से चमचागिरी करते रहना। आप चमचागिरी शुरू तो कीजिए, फिर आप देखिये कि इस कला से उद्भूत लाभ आपकी सेवा मे स्वयं दौड़े आते हैं। ज्ञान की प्रत्येक शाखा के कुछ-न-कुछ निर्देशक सिद्धान्त होते हैं। चमचागिरी करते समय आपको भी इसके निर्देशक सिद्धान्तो को दृष्टिगत रखना होगा और उन पर पूरी ईमानदारी से अमल करना होगा। यदि आप इस कला के सिद्धातों पर ईमानदारी से अमल कर रहे हैं, तो ईश्वर ने चाहा इससे होनेवाली सम्पूर्ण कृपाओं से आप निश्चित रूप से लाभान्वित होंगे। प्रथम और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त यह है कि चमचागिरी करते समय आप चेहरे पर इस प्रकार का भाव दर्शाइये कि आप जो कुछ भी बात कह रहे हैं, वह पूरी संजीदगी के साथ कही जा रही है। दूसरे, आप अपनी बातों के मध्य समय-समय पर इस बात को परोक्ष रूप से दोहराते रहिये कि आपके बराबर उनका (अर्थात् जिनकी चमचागिरी की जा रही है) शुभचिन्तक और कोई है ही नहीं (यों आप अपने

अन्तरतम में उनके सर्वनाश की कामना ही क्यों न रखते हों)। तीसरे, चमचागिरी के दौरान आप अपने चेहरे पर 'गीता' में वर्णित निष्काम-भाव पैदा कीजिए, जिससे लोगों एवं आपके 'प्रभु' को यह लगे कि इतनी सब बातों के पीछे आपका कोई व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं है। यदि आप इन निर्देशक तत्त्वों को अक्षरशः अपनाने में सफल हो गये, तो समझ लीजिए कि आपने मैदान मार लिया, आपको फतह मिल गयी।

चमचागिरी के अनेक लाभ हैं। एक-दो लाभ हों तो गिनाये भी जाएँ। चमचागिरी की कला में पारंगत लोग ही इसके चमत्कारिक लाभों को जानते हैं। अब यह आपका काम है कि आप इन 'चमचों' की सफल चमचागिरी करें, जिससे वे रहम खाकर आपको भी इस कला के कुछ गुर और प्रमुख लाभ बतला दें। मैं यहाँ कुछ झाँकियाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ। इन्हें पढ़कर आप कदाचित् इस कला से होनेवाले लाभों से अवगत हो सकें।

कुछ वर्ष पूर्व मुझे एक 'विद्वान' शिक्षाधिकारी महोदय (विद्वान शब्द पर इसलिए ज़ोर दे रहा हूँ कि वे अपने-आपको आचार्य शुक्ल से कम नहीं समझते थे, जबकि वास्तविकता यह थी कि इन महोदय ने आचार्य शुक्ल का नाम मौके-बेमौके कहीं सुन लिया था) के अधीनस्थ कार्य करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनका कहना था कि उनके विचारों के संकलन मात्र से पी-एच० डी० की डिग्री ली जा सकती है (जबकि वे पी-एच० डी० का अर्थ भी नहीं जानते थे); और चमचागिरी की हद भी देखिये। उनके चमचे उनको भारत का अग्रणी शिक्षाविद् कहकर स्वयं को कृतार्थ अनुभव करते। उनके इन प्रशंसकों को इसका तात्कालिक लाभ मिल जाता। खाने-पीने आदि के मामलों में ऐसे ही शुभचिन्तकों की सम्मति ली जाती। इसके अतिरिक्त कार्यालय में देर से पहुँचना, निर्धारित समय से पूर्व गृह-प्रस्थान, अतिरिक्त दायित्वों से मुक्ति आदि होनेवाले लाभ क्या कम है ?

मैं एक ऐसे सज्जन को जानता हूँ जिन्हें उनके तथाकथित अनेक मित्रगण समय-कुसमय घेरे रहते हैं। ये सज्जन पूर्वजों एवं अपने विद्यार्थी-काल की गौरव-परम्परा का बखान करते थकते नहीं। यहाँ एक बात मैं आपको राज़ की बता दूँ, किन्तु इसे आप अपने तक ही सीमित रखियेगा। दरअसल इन साहब ने हर परीक्षा सर्वाधिक लकीरों (कम लकीरों में शायद उन्हें अपमान की अनुभूति होती हो) के साथ उत्तीर्ण करने में ही अपना गौरव समझा है। अब आप स्वयं समझ गये होंगे कि ये सज्जन सदैव रॉयल डिवीजन (तृतीय श्रेणी) प्राप्त कर अपने-आपको 'रॉयल' (अर्थात् राजकुमार) समझते रहे। जहाँ तक इनकी मित्र-मंडली की बात है, प्रथम तो वे इन महानुभाव की इस गौरवपूर्ण परम्परा से भिज्ञ नहीं हों और यदि हों भी तो उनको इससे क्या लेना-देना ! उनकी दृष्टि में तो

ये साहब लखनऊ के किसी बिगड़े नवाब एवं साथ-ही-साथ किसी मूर्धन्य विद्वान से कम नहीं। आचार्य शुक्ल एवं किसी राजकुमार की श्रेणी मे इन साहब को बिठला देने से इन तथाकथित शुभचिन्तकों को 'कुछ' समय-समय पर प्राप्त होता रहे, तो इतना लाभ उठाने से भी मित्रगण क्यो चूकें ? समय का यही तो तकाजा है !

मुझे एक ऐसे महानुभाव के सम्पर्क मे आने का अवसर प्राप्त हुआ जो अपने को स्वामिभक्ति, कर्तव्यपरायणता एवं ईमानदारी का मसीहा मानते हैं। समय-समय पर ये महानुभाव उपदेश भी झाड़ते रहते है। इनका यह रिकार्ड रहा है कि बॉस बाहर रहे तो प्रतिदिन दफ्तर से देर से पहुँचा जाय (समय पर पहुँच जाने से शायद उनकी तौहीन हो)। और जब बॉस मुख्यालय पर हों तो समय से घंटा-आधा घंटा पूर्व पहुँचकर अपने अन्य साथियों के सम्बन्ध में टीका-टिप्पणी करने के अवसर का लाभ उठाया जाय। बॉस के सामने आवश्यकता से अधिक व्यस्त रहने का उपक्रम और बॉस की अनुपस्थिति में नियमित कार्यक्रम की उपेक्षा—ये इन महानुभाव की प्रमुख चारित्रिक विशेषताएँ है। अपने बॉस के एकमात्र अथवा सर्वाधिक शुभचिन्तक है, और इन्हे स्वप्न मे भी उनके हित की चिन्ता बनी रहती है। वस्तुत. बॉस इनके लिए माई-बाप से कम नहीं।

हाँ, तो बन्धुओ ! अब आप स्वयं ही विचार कर लीजिए कि चमचागिरी की कला कितनी चमत्कारिक एवं फलदायिनी है। यह अलादीन के चिराग से किसी रूप में कम नहीं। कविवर रहीम न जाने किस मासूमियत से यह लिख गये—

निंदक नियरे राखिये, आँगन कुटी छवाय।
बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करे सुभाय ।।

यदि वे चमचागिरी की कला में निष्णात हुए होते तो इन पक्तियां को न लिखकर वे कदाचित् निम्न पंक्तियां लिखकर आगे आनेवाली पीढ़ियों का मार्गदर्शन करते—

चमचा नियरे राखिये, आँगन कुटी छवाय।
बिन हल्दी औं' फिटकरी, हर्षित करे सुभाय ।।

तो अब आपने एक अच्छा 'चमचा' बनने का निश्चय कर ही लिया होगा। आज से ही प्रयास आरम्भ कर दीजिये, क्योंकि शुभ-कार्य मे देर की आवश्यकता नहीं। प्रारम्भ में यदि आपको कुछ असफलता भी हाथ लगे, तो निराश होने की आवश्यकता नहीं। यह तो आपकी परीक्षा है। यदि आप निश्चय एवं तल्लीनतापूर्वक इस कला को सीखने मे जुट गये, तो निश्चित रूप से सफलता आपके चरण चूमेगी और आप एक 'आदर्श' चमचा बनने का श्रेय प्राप्त कर सकेंगे।

लेखक-परिचय

अरनी रॉबर्ट्स, उ० मा० वि०, घाटोल, बाँसवाड़ा ; **आनन्दकौशल सक्सेना**, ३०१/११, तोपदड़ा, अजमेर; **ओम अरोड़ा**, १४१, एच. ब्लाक, श्रीगंगानगर; **काशीलाल शर्मा**, शिक्षा प्रसार अधिकारी, आसीन्द, भीलवाड़ा; **कुन्दनसिंह सजल**, रा० मा० वि०, गुरारा, खंडेला, सीकर; **कुशल ठारवानी**, गांधी विद्यालय, गुलाबपुरा, भीलवाड़ा; **गुलाबचन्द रांका**, रा० मा० वि०, हुरड़ा, भीलवाड़ा; **गोपालप्रसाद मुद्गल**, पाण्डेय मोहल्ला, डीग, भरतपुर; **जगदीश सुदामा**, श्रीकृष्ण निकुंज, भटियानी चोहटा, उदयपुर, **देवप्रकाश कौशिक**, रा०मा०वि०, कोठियाँ, भीलवाड़ा; **श्रीनन्दन चतुर्वेदी**, रा० उ० मा० वि०, गुमानपुरा, कोटा; **प्रेमपाल शर्मा**, रा० उ० मा० वि०, सेवाड़ी, पाली; **बसन्तीलाल महात्मा**, रा० मा० वि०, सिंहपुर, चित्तौड़, **योगेशचन्द्र जानी**, ब्रह्मपुरी, बड़ी सादड़ी, चित्तौड़; **रघुनाथ चित्रेश**, रा० उ० मा० वि०, बेगूं, चित्तौड़; **रमेश गर्ग**, रा० उ० मा० वि०, निम्बाहेड़ा, चित्तौड; **राजेन्द्रप्रसाद सिंह डांगी**, जिला स्काउट मास्टर, शाहपुरा, भीलवाडा; **राधाकृष्ण शास्त्री**, लाचरियावास, सीकर; **विश्वनाथ पाण्डेय**, रा० मा० वि० राजलदेसर, चूरू; **विश्वम्भरप्रसाद शर्मा**, विवेक कुटीर, सुजानगढ; **विश्वेश्वर शर्मा**, श्रीकृष्ण निकुंज, भटियानी चोहटा, उदयपुर; **श्याम सुन्दर व्यास**, रा० उ० मा० वि०, कपासन, चित्तौड़; **श्रीमती क्षमा चतुर्वेदी**, ओम भवन, मंगलपुरा, झालावाड़; **श्रीराम शर्मा**, **सिराजुद्दीन सिराज**, रा० मा० वि०, कोठियाँ, भीलवाड़ा; **सुलतानसिंह गोदारा**, भोपालवाला हायर सेकण्डरी स्कूल, श्रीगंगानगर; **हरगोविन्द गुप्त**, रा० उ० मा० वि०, अटरू, कोटा; **हुलासचन्द्र जोशी**, टी० टी० कॉलेज, बीकानेर; **हेमप्रभा जोशी**, प्रा० वि०, जेल-वेल, बीकानेर।